



**शरीर का योग**

**अग्निशिखा**

अखिल भारतीय पत्रिका — नवम्बर २०१५

## विषय-सूची

सन्देश	श्रीअरविन्द	३
<b>शरीर का योग</b>		
(भौतिक शरीर के रूपान्तर की श्रीमां की अनुभूतियां)		
शरीर के लिए एक नयी सम्भावना		४
शरीर : मानव और भगवान्		९
शारीरिक रूपान्तर का आरम्भ		११
दो जगत्ओं के बीच शरीर सेतु बन गया		१४
महान् संक्रमण		२०
शक्ति का स्थानान्तरण		२६
अतिमानव का अवतरण		३०
अमरता की चेतना		३३
श्रीमां का नया शरीर		३७
मृत्यु पर विजय	अमल किरण	४७
श्रीमां का एक अन्तर्दर्शन		४८

## 'पुरोध'

दैनन्दिनी		५१
एक दिन...	श्रीअरविन्द	५४
सत्य निष्ठा	स्व. रवीन्द्र	४९
वह रेलयात्रा और अविस्मरणीय वे दो नाम	लीना सरमा	५५

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website: [www.aurosociety.org](http://www.aurosociety.org)

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

## सन्देश

हमारा योग रूपान्तरण का योग है, लेकिन सम्पूर्ण चेतना का और समस्त प्रकृति का, ऊपर से लेकर नीचे तक, इसके छिपे हुए आन्तरिक भागों से लेकर इसकी स्पर्श-योग्य बाह्य गतियों तक का रूपान्तरण। यह न तो नैतिक परिवर्तन है और न ही धार्मिक परिवर्तन, न यह सन्तता है, न ही वैराग्यपूर्ण अनुशासन, न यह मात्र उदात्तीकरण है, न ही जीवन या प्राणिक गतियों का दमन, जैसा कि बहुत-से लोग मानते हैं, न यह महिमागान है न ही भौतिक अस्तित्व का त्याग अथवा उसका तिरस्करण। जिस पर ध्यान देना है वह है, कम से अधिकतर, निम्न से उच्चतर, सतही से गहनतर चेतना में परिवर्तन। वस्तुतः हमारा स्वप्न है, बृहत्तम, उच्चतम तथा गहनतम में प्रवेश करना, साथ ही सारी सत्ता का—उसके सभी तत्त्वों और द्रव्यों का, अस्तित्व की उस भागवत प्रकृति में ब्योरेवार पूर्ण बदलाव और रूपान्तरण जो भागवत प्रकृति अभी तक पृथ्वी पर चरितार्थ नहीं हुई है।

—श्रीअरविन्द

# शरीर के लिए एक नयी सम्भावना

नया परदा विदीर्ण कर दिया गया है

उस शिखर की ऊंचाई से जो तेरे दिव्य अनन्त प्रेम के साथ तदात्म है, तूने मेरी दृष्टि इस जटिल शरीर की ओर मोड़ दी जिसे तेरे यन्त्र के रूप में तेरी सेवा करनी है। और तूने मुझसे कहा, “यह स्वयं मैं हूँ; क्या तू इसमें मेरे प्रकाश को चमकते हुए नहीं देखती?” और वस्तुतः मैंने तेरा दिव्य प्रेम देखा जो बुद्धि से आवृत था, और फिर शक्ति से—जो इस शरीर का, इसके छोटे-से-छोटे कोषाणुओं तक का निर्माण कर रहा था और इसमें इतने तेज से चमक रहा था कि यह शरीर करोड़ों चमकदार चिनगारियों के मेल के सिवा और कुछ न था, सभी यह अभिव्यक्त कर रही थीं कि वे ‘तू’ ही हैं।...

हे मेरे मधुर स्वामी, तूने एक नया परदा विदीर्ण कर दिया है, मेरे अज्ञान का एक और परदा और मैं तेरे शाश्वत हृदय में अपना आनन्दमय स्थान छोड़े बिना और साथ-ही-साथ, अपने शरीर की रचना करने वाले अणुओं में से हर एक अदृश्य परन्तु अनन्त हृदय में भी निवास करती हूँ।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १, पृ. ८९-९०

## शारीरिक रूपान्तर की सम्भावना

उस ‘जड़-पदार्थ’ का रूपान्तर जो प्रत्यक्ष रूप में सबसे अधिक अदिव्य है, भगवान् की अकथनीय नम्रता की सबसे बड़ी विजयों में से एक होगी। अतिमानसिक नमनीयता अन्ततः रूपान्तरित ‘जड़-पदार्थ’ का एक गुण है। जिस अतिमानसिक शरीर को यहां प्रकट करना है उसके चार मुख्य गुण होंगे : हलकापन, अनुकूलनशीलता, नमनीयता और ज्योति। जब भौतिक शरीर पूरी तरह दिव्य हो जायेगा तो ऐसा लगेगा कि मानों वह हमेशा हवा पर चल रहा है, जिसमें कोई भारीपन या तमस् या अचेतना न होगी। उसकी अनुकूलनशीलता की कोई सीमा न होगी : वह चाहे जिन परिस्थितियों में हो, तुरन्त अपने-आपको उनकी मांग के अनुकूल बना लेगा, क्योंकि उसकी पूर्ण चेतना उस तमस् और अक्षमता को निकाल बाहर करेगी जो ‘जड़-पदार्थ’ को ‘आत्मा’ के लिए बोझ बना देती है। अतिमानसिक नमनीयता उसे भेदने की कोशिश करने वाली हर विरोधी शक्ति के आक्रमण का सामना करने के योग्य बना देगी : वह आक्रमण का निर्जीव प्रतिरोध न

करेगी, बल्कि इसके विपरीत, इतनी लचीली होगी कि उसे निकल जाने का रास्ता दे देगी और इस तरह उसे निष्क्रिय बना देगी। इस तरह कोई हानिकर परिणाम न आ पायेंगे और अत्यन्त घातक आक्रमण भी उसे सही-सलामत छोड़ जायेंगे। और अन्त में, वह एक ज्योतिर्मय पदार्थ में बदल जायेगा जिसका हर कोषाणु अतिमानसिक भव्यता को विकीरित करेगा। केवल वे ही नहीं जो इतने विकसित हैं कि उनकी सूक्ष्म दृष्टि खुल गयी हो, साधारण मनुष्य भी इस ज्योति को देख सकेगा। यह हर एक के लिए एक स्पष्ट तथ्य होगा, रूपान्तर का एक स्थायी प्रमाण होगा जो बड़े-से-बड़े शंकाशील व्यक्ति को भी विश्वास दिला देगा।

शारीरिक रूपान्तर परम आध्यात्मिक पुनर्जन्म होगा—यह सामान्य भूत को एकदम दूर कर देगा। क्योंकि आध्यात्मिक पुनर्जन्म का अर्थ है, अपने पिछले सम्बन्धों, संसर्गों और परिस्थितियों को दूर हटा कर, मानों हर अछूते क्षण एक नया जीवन जीना। यह है कर्मभोग से, अपने पुराने कर्मों की धारा से मुक्त होना : दूसरे शब्दों में कहें तो प्रकृति की सामान्य कार्य-कारणवाली गतिविधि के बन्धनों से मुक्त होना। जब हम अपनी चेतना में विजयी होकर भूत को एकदम काट कर अलग कर सकेंगे तो ये सब भूलें, अपराध, मूर्खताएं आदि जो अभी तक हमारी स्मृति में बहुत जीवन्त रूप में चिपकी हुई हैं और जोंकों की तरह हमारा जीवन-रक्त पी रही हैं, अपने-आप झड़ जायेंगी और हमें आनन्दमग्न और स्वतन्त्र छोड़ जायेंगी।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ३, पृ. १८६-८७

### सचेतन ऊर्जा के केन्द्र

रूपान्तर में यह बात आ जाती है कि इस पूरी तरह से भौतिक व्यवस्था का स्थान शक्ति के केन्द्रों की व्यवस्था ले ले जिसमें अमुक प्रकार के विभिन्न स्पन्दन होते हैं; हर अवयव और इन्द्रिय का स्थान सचेतन ऊर्जा का केन्द्र ले ले जिसका सञ्चालन सचेतन संकल्प करे और नियमन ऊपर से, उच्चतर क्षेत्रों से आने वाली गति। आमाशय नहीं, हृदय नहीं, रक्त-सञ्चार नहीं, फुफ्फुस नहीं...। ये सब गायब। और इन सबके स्थान पर स्पन्दनों की ङ्खला—जो उसका प्रतिनिधित्व करेगी, अवयव जिसका प्रतीक हैं। क्योंकि अवयव या इन्द्रियां ऊर्जा के केन्द्रों के भौतिक प्रतीक-भर हैं, वे

तात्त्विक सद्वस्तु नहीं हैं। वे उसे केवल एक आकार या किन्हीं परिस्थितियों में सहारा देते हैं। तब रूपान्तरित शरीर अपने वास्तविक ऊर्जा-केन्द्रों के द्वारा काम करेगा, पाशविक शरीर में बने उनके प्रतीकात्मक प्रतिनिधियों द्वारा नहीं। इसलिए सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि वैश्व ऊर्जा में तुम्हारा हृदय किस चीज का प्रतिनिधि है, रक्तसञ्चार किस चीज का प्रतिनिधि है, आमाशय और मस्तिष्क किस चीज के प्रतिनिधि हैं। शुरू में, पहले तो तुम्हें इस सबके बारे में सचेतन होना होगा। और तब ये अवयव या इन्द्रियां जिन मौलिक स्पन्दनों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे तुम्हारे अधिकार में होने चाहियें। और तुम्हें धीरे-धीरे अपने शरीर में इन सब ऊर्जाओं को इकट्ठा करना होगा और हर अवयव के स्थान पर सचेतन ऊर्जा के केन्द्र को लाना होगा जो प्रतीकात्मक क्रिया के स्थान पर वास्तविक क्रिया को लायेगा...। तुम्हें लगता है कि यह सब करने में बस तीन सौ वर्ष ही लगेंगे? मुझे तो लगता है कि एक ऐसा रूप पाने में तीन सौ वर्ष से बहुत अधिक समय लगेगा जिसमें ठीक वही गुण नहीं होंगे जिन्हें हम जानते हैं, बल्कि बहुत अधिक श्रेष्ठ गुण होंगे; एक ऐसा रूप जिसके बारे में हम यह स्वप्न ले सकते हैं कि वह नमनीय होगा : जैसे तुम्हारे भावों के साथ चेहरे का भाव भी बदलता है, उसी तरह तुम शरीर से जो व्यक्त करना चाहते हो उसके अनुसार शरीर भी बदलेगा (रूप नहीं, उसी रूप के अन्दर), वह बहुत घन हो सकता है, बहुत विकसित, बहुत आलोकमय, बहुत शान्त हो सकता है जिसमें इच्छानुसार पूर्ण नमनीयता, पूर्ण लचीलापन, हलकापन होगा...। क्या तुमने ऐसा स्वप्न नहीं देखा जिसमें तुम धरती को धक्का मार कर ऊपर उठ जाते हो और हवा में उड़ते फिरते हो? तुम इधर-उधर घूमते हो। तुम अपने कन्धे से जरा-सा धक्का देते हो और इस ओर चले जाते हो; तुम फिर धक्का देते हो और उस ओर चले जाते हो। तुम आसानी से जहां चाहो चले जाते हो और अन्त में यह सब करके तुम अपने शरीर में लौट आते हो। हां, तो तुम्हें यह सब अपने शरीर के साथ कर सकना चाहिये, और श्वासोच्छ्वास के साथ सम्बन्ध रखने वाली कुछ चीजें भी—लेकिन वहां फेफड़े न होंगे। प्रतीकात्मक गति के पीछे एक सच्ची गति होती है जो तुम्हें हलकेपन की यह क्षमता देती है। तुम अब गुरुत्वाकर्षण के तन्त्र से बच निकलते हो। यही बात प्रत्येक अवयव के बारे में होती है।

कल्पना का कहीं कोई अन्त नहीं : जब चाहो आलोकमय बन जाओ, जब चाहो पारदर्शक बन जाओ। स्वभावतः इस शरीर में हड्डियों की जरूरत न रहेगी। यह हड्डी, चमड़ी और आंतों का शरीर न होगा। यह और ही चीज होगी। यहां संकल्प की आज्ञा मानने वाली घनीभूत ऊर्जा होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई निश्चित या पहचाने जा सकने वाले रूप न होंगे। रूप ठोस कणों से नहीं, गुणों से बने होंगे। यह कहा जा सकता है कि वह क्रियात्मक और व्यावहारिक रूप होगा। वह भौतिक शरीर की स्थिरता की तुलना में सुनम्य, गतिशील और इच्छानुसार हलका होगा।

### इस बदलाव के लिए समय की आवश्यकता होगी

हां, तो इसे जैसा कि मैंने कहा, उस रूप में बदलने के लिए, जिसका मैंने अभी वर्णन किया है, तीन सौ वर्ष सचमुच बहुत कम हैं। लगता तो यह है, इससे बहुत ज्यादा लगेंगे। शायद बहुत, बहुत, बहुत संकेन्द्रित कार्य के साथ...

लेकिन बहुत-सी आपत्तियां की जा सकती हैं। यह कहा जा सकता है कि जब तक परिवेश में कुछ परिवर्तन न हो तब तक शरीर में परिवर्तन होना सम्भव नहीं है। अगर तुम इतने ज्यादा बदल गये तो अन्य चीजों के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध होगा? अन्य सत्ताओं के साथ भी? ऐसा लगता है कि तुम्हारे अस्तित्व के लिए, तुम्हारे रह सकने के लिए चीजों की एक पूरी ङंखला का, कम-से-कम, अपेक्षित मात्रा में बदलना जरूरी है। इससे बहुत जटिलता आ जाती है क्योंकि तब केवल एक व्यक्तिगत चेतना के काम की बात नहीं रहती। यह तो सामूहिक चेतना की बात हो जाती है। इसलिए यह और भी अधिक कठिन है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ५, पृ. ६५-६८

### दो पद्धतियां और दो सम्भावनाएं

... दो बातें हैं। एक ओर तो विशुद्ध अतिमानसिक सृष्टि की सम्भावना है और दूसरी ओर इस भौतिक शरीर के अतिमानसिक शरीर में प्रगतिशील रूप से रूपान्तरित होते जाने की सम्भावना है अर्थात् मानवीय शरीर के अतिमानवीय शरीर में रूपान्तर की सम्भावना। तब यह एक प्रगतिशील रूपान्तर होगा जिसमें कुछ वर्ष लगेंगे, सम्भवतः काफी वर्ष लगे और

उससे एक ऐसे प्राणी का आविर्भाव हो जो “मनुष्य” शब्द के साथ पशुता की जो भावना जुड़ी है उस अर्थ में तो “मनुष्य” नहीं होगा, पर ऐसा अतिमानसिक प्राणी भी न होगा जो समस्त पशुता से पूरी तरह बाहर हो, क्योंकि उसका वर्तमान मूल उद्भव अवश्य ही पाशविक है। इस प्रकार रूपान्तर तो हो सकता है और इतना रूपान्तर हो सकता है कि इस मूल स्रोत से काफी कुछ मुक्ति मिल जाये, पर फिर भी वह चीज विशुद्ध और सम्पूर्णतः अतिमानसिक सृष्टि नहीं होगी। श्रीअरविन्द ने कहा है कि एक मध्यवर्ती जाति होगी—जाति होगी या शायद कुछ व्यक्ति होंगे, कहना कठिन है—एक मध्यवर्ती सोपान जो रास्ते का काम देगा अथवा सृष्टि के प्रयोजन एवं आवश्यकता की दृष्टि से इसे स्थायी भी बनाया जा सकता है। परन्तु यदि हम उस शरीर से शुरू करें जो वर्तमान मानव शरीरों की तरह बना हुआ है तो वही परिणाम कभी नहीं प्राप्त होगा जो तब होगा जब शरीर पूरी तरह अतिमानसिक पद्धति और प्रक्रिया से बन कर तैयार होगा। शायद वह इस अर्थ में बहुत कुछ अतिमानव की तरह होगा कि पशु के समस्त व्यक्त रूप समाप्त हो जायेंगे पर उसमें उस शरीर की वह चरम पूर्णता नहीं होगी जो अपनी रचना में विशुद्ध रूप से अतिमानसिक होगा।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ९, पृ. १४४-४५

निःसन्देह मनुष्य से भेंट करने के लिए भगवान् स्वयं को मुखौटे के पीछे छिपा लेते हैं। अगर हम शुरू से ही भौतिक रूप से अतिमानस में रहते तो कोई हम तक पहुंच नहीं पाता, कोई साधना सम्भव ही नहीं होती। हमारे और धरती तथा मनुष्यों के बीच किसी भी सम्पर्क की आशा ही नहीं होती। वैसे ही, हमेशा अपनी उच्चतर चेतना में बने रहने की जगह श्रीमां को साधकों की चेतना तक नीचे उतरना ही पड़ता है, नहीं तो वे कहना शुरू कर देते हैं, “कितनी दूर हैं आप, कितनी कठोर, आप मुझसे प्रेम नहीं करतीं, मुझे आपसे कोई सहायता ही नहीं मिलती इत्यादि, इत्यादि।”

मनुष्य से भेंट करने के लिए भगवान् को स्वयं को मुखौटे के पीछे छिपाना ही पड़ता है।

—श्रीअरविन्द



# शरीर : मानव और भगवान्

## भागवत कार्य का प्रतीक और मूर्त रूप

मेरा शरीर तभी अतिमानसिक शरीर बनेगा जब मनुष्यों की प्रगति के लिए यह जरूरी न रहेगा कि यह उनके शरीर जैसा हो।

यह तथ्य है कि 'परम देव' ने हमेशा शरीर को रूपान्तरित करने और उसे धरती पर अपनी अभिव्यक्ति का एक उपयुक्त यन्त्र बनाने के उद्देश्य से भौतिक शरीर धारण किया। लेकिन यह भी एक तथ्य है कि अभी तक वे यह करने में असफल रहे हैं और किसी-न-किसी कारण उन्हें रूपान्तर के कार्य को अधूरा छोड़ कर अपना भौतिक शरीर त्यागना पड़ा।

भगवान् जिस शरीर द्वारा अपने-आपको अभिव्यक्त कर रहे हैं उसे सम्पूर्ण रूपान्तर साधित होने तक बनाये रखें, इसके लिए जरूरी है कि ज्यादा नहीं तो कम-से-कम एक व्यक्ति सामञ्जस्य, बल, सच्चाई, सहनशीलता, निःस्वार्थता, भौतिक में सन्तुलन की आवश्यक शर्तों को पूरा करे। यह शरीर जिसमें भगवान् अवतरित होते हैं, यह केवल सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु ही न हो, बल्कि अपवादिक रूप से एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज हो, स्वयं भागवत 'कार्य' से भी अधिक महत्त्वपूर्ण, बल्कि यूँ कहें, यह शरीर धरती पर भागवत 'कार्य' का प्रतीक और मूर्त रूप हो जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ५५-५६

## मैं लगी रहूंगी

पिछले कुछ दिनों से सवेरे जागते समय मुझे एक बड़ा अजीब-सा संवेदन होता है कि मैं एक ऐसे शरीर में प्रवेश कर रही हूँ जो मेरा नहीं है—मेरा शरीर सबल और स्वस्थ, ऊर्जा और जीवन से भरा, लोचदार और सामञ्जस्यपूर्ण है, लेकिन इस शरीर में इनमें से कोई गुण नहीं होता; उसके साथ सम्पर्क पीड़ा देता है; मुझे अपने-आपको उसके अनुकूल बनाने में बहुत कठिनाई होती है और इस बेचैनी को दूर करने में बहुत समय लगता है।

... शरीर बार-बार और मर्मस्पर्शी सच्चाई के साथ दोहराता है : "मैं

किसी से भी कोई भी चीज क्यों मांगू? अपने-आपमें मैं कुछ नहीं हूँ, मैं कुछ नहीं जानता, मैं कुछ नहीं कर सकता। जब तक सत्य मुझे भेद कर मुझे आदेश न दे, मैं छोटे-से-छोटे निर्णय लेने और यह जानने में भी असमर्थ हूँ कि बहुत ही नगण्य परिस्थितियों में भी करने-लायक और जीने-लायक सबसे अच्छी चीज क्या है। क्या मैं कभी इस हद तक रूपान्तरित होने के योग्य बनूँगा कि मुझे जो होना चाहिये वह होऊँ और जो धरती पर अभिव्यक्त होना चाहता है उसे अभिव्यक्त करूँ?” गहराइयों से निर्विवाद निश्चिति के साथ हमेशा तेरा यह उत्तर क्यों आता है, प्रभो : “अगर तुम न कर सको तो धरती पर और कोई शरीर इसे न कर सकेगा?” बस, एक ही निष्कर्ष निकलता है : मैं अपने प्रयास में लगी रहूँगी, हार न मानूँगी, मैं मृत्यु या विजय तक लगी रहूँगी।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १३, पृ. ५६, ५७

### शरीर की प्रार्थना

मैं अब तक “मैं” नहीं कह सकती, क्योंकि जब मैं “मैं” कहती हूँ तो लोग मेरे शरीर के बारे में सोचते हैं, और मेरा शरीर अब तक सचमुच “मैं” नहीं है, उसका रूपान्तर अब तक नहीं हुआ, और यह बात उनके मनो में गड़बड़ पैदा करती है। इसके अलावा, मैंने हमेशा यह अनुभव किया है कि भौतिक चेतना में जीवन्त और निरन्तर नम्रता बनाये रखने के लिए अपनी अपूर्णता देखने की मेरे शरीर की यह वृत्ति अनिवार्य थी।

जब रूपान्तर सर्वांगीण हो जायेगा, तब मैं कह सकूँगी, उससे पहले नहीं।...

हे दिव्य ‘प्रकाश’, अतिमानसिक ‘सद्वस्तु’: इस भोजन के साथ सारे शरीर में प्रवेश कर, प्रत्येक कोषाणु में प्रवेश कर, हर अणु के अन्दर अपने-आपको प्रतिष्ठित कर; वर दे कि हर चीज पूरी तरह सच्ची, निष्कपट और ग्रहणशील बन जाये, ऐसी सभी चीजों से मुक्त हो जो अभिव्यक्ति में बाधा देती हैं, संक्षेप में, मेरे शरीर के उन सभी भागों को जो अभी तक ‘तू’ नहीं हुए हैं, अपनी ओर खोल।...

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १३, पृ. ५८-५९

# शारीरिक रूपान्तर का आरम्भ

## शरीर में अतिमानसिक शक्ति

परसों आधी रात को मैं अचानक जाग गयी, मैं जागी इस अनुभूति के साथ कि मेरे शरीर के अन्दर कहीं अधिक विशाल और कहीं अधिक शक्तिशाली एक सत्ता है—मेरी सामान्य सत्ता से बहुत विशाल। मानों वह मेरे शरीर से बाहर उफन रही थी; और वह इतनी अधिक शक्तिशाली थी कि प्रायः असुविधाजनक थी।...

आधी रात का समय था, मैं बिस्तर पर लेटी हुई थी; मैं पीठ के बल थी, और मेरा सारा शरीर **एकमेव** स्पन्दन बन गया, वह क्रिया बहुत तेजी से हुई, बहुत सघन थी वह, लेकिन थी शान्त-अचञ्चल। मुझे मालूम नहीं कि इसे कैसे समझाया जाये, क्योंकि वह देश या काल में नहीं चल रही थी, लेकिन था वह एक स्पन्दन; फिर भी वह आकाश में स्थिर थी। और मेरे शरीर का यथार्थ रूप था—परम 'चेतना' का नितान्त भव्यतम श्वेत प्रकाश—वह थी परम की चेतना। वह चेतना शरीर में थी और मानों प्रत्येक कोषाणु में एक स्पन्दन था, और यह सब स्पन्दनों के एक ही खण्ड का हिस्सा था। यह चेतना शरीर के इतनी बाहर तक निकल आयी थी (श्रीमां करीब ६ सें.मी. दिखलाती हैं)। मैं अपने बिस्तर पर बिलकुल निश्चल थी, एकदम निश्चेष्ट, मैंने उस चेतना को ऊपर उठते देखा—मैं बिलकुल हिल-डुल नहीं रही थी, समझ रहे हो न : मैं ऐसे ही बनी रही (श्रीमां प्रणाम की मुद्रा में जुड़े अपने दोनों हाथों को माथे तक ले आती हैं) मानों उनका सारा शरीर सचेतनतः प्रार्थना में उठ रहा हो, इस चेतना का आरोहण परम 'चेतना' की ओर हो रहा हो।...

करीब पौन घण्टे तक चेतना उठती गयी, ऊपर, ऊपर, ऊपर उठती चली गयी—जब तक कि... सन्धिस्थल न आ गया।

एक सचेतन सन्धिस्थल, पूरी तरह से जाग्रत, **वह ध्यान नहीं था।**

इस तरह चेतना 'एकमेव चेतना' बन गयी : सम्पूर्ण, शाश्वत, देश के परे, काल के परे, गति के परे, सब कुछ के परे... वह... एक आनन्दातिरेक, एक परमानन्द, कोई ऐसी चीज बन गयी जो वर्णनातीत है। **वह थी शरीर की चेतना।**

अभी वह... अभी अन्तिम बदलाव बहुत दूर है। उसके पहले बहुत कुछ करना बाकी है। लेकिन हम कह सकते हैं कि यह शरीर में अतिमानसिक 'शक्ति' की सचेतन तथा पूर्ण उपस्थिति है।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप

२४ जनवरी १९६१

## भौतिक अहंकार का पूर्ण विघटन

करीब तीन घण्टों तक भौतिक अहंकार पहली बार ऐसे पूर्ण रूप से विघटित हुआ। 'शक्ति' के सिवाय और कुछ नहीं था, 'सत्-चित्-आनन्द' के सिवाय और कुछ नहीं था, न केवल चेतना में बल्कि भौतिक संवेदना में भी—पूरे विश्व में भागवत सच्चिदानन्द की सतत बाढ़ छायी हुई थी।...

... और इस सारे समय, करीब तीन घण्टों तक, चेतना पूरी तरह से, पूरी तरह से भिन्न थी। यद्यपि वह यहां थी, वह पृथ्वी के बाहर न थी, वह पृथ्वी पर ही थी, लेकिन वह पूरी तरह से भिन्न थी—यहां तक कि शरीर की चेतना भी भिन्न थी। और जो बचा रह गया, वह बहुत ही यान्त्रिक था; वह एक शरीर था... सत्तर साल से अधिक समय तक मैंने शरीर के प्रत्येक कोषाणु में धीरे-धीरे चेतना की यह सारी शक्ति भरी है ताकि प्रत्येक कोषाणु सचेतन हो जाये...

... उन तीन घण्टों में और कुछ नहीं था, बस 'सनातन माता' के द्वारा 'परम प्रभु' स्वयं को अभिव्यक्त कर रहे थे।...

वह सतत, सर्व-शक्तिशाली बाढ़ थी, स्वयं 'प्रभु' अद्वितीय विविध तरीकों से स्वयं को अभिव्यक्त कर रहे थे।

वह क्रिया विश्व के जितनी विशाल थी, वह सतत क्रिया थी—वह किसी ऐसी वस्तु की अभिव्यक्ति थी जो वस्तु सर्वत्र है, सर्वदा है, अखण्ड है। कोई विभाजन नहीं था। और रंगों, स्पन्दनों, शक्तियों की कितनी विविधता थी—अद्भुत! वह एकमेव वस्तु थी, और उसमें सब कुछ था।

उसमें तीन 'परम सिद्धान्त' स्पष्ट थे : सत्, चित् (सक्रिय चेतना) तथा आनन्द। एक वैश्व विस्तार था जो विस्तृत होता ही चला जा रहा था...

वह सचल था और साथ ही अचल था। तुम इसकी व्याख्या कैसे कर सकते हो भला? वह एक सतत गति थी, अविराम गति, और फिर भी वह अपने स्थान से हिल नहीं रही थी! मुझे यह अन्तर्दर्शन हुआ या यह अन्तर्दर्शन वहां उपस्थित था कि कोई चीज शाश्वत काल से है, जिसने कभी अपने-आपको दोहराया नहीं, जिसका न आदि है, न अन्त, जो अपना स्थान नहीं बदलती, लेकिन फिर भी सतत चलायमान रहती है।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप

२४ मई १९६०



हर उपस्थित व्यक्ति के साथ सचेतन सम्पर्क स्थापित कर लेने के बाद में 'परम प्रभु' के साथ एक हो जाती हूं और तब मेरा शरीर केवल एक माध्यम के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता जिसमें से 'वे' सब पर अपना 'प्रकाश', 'चेतना' और 'आनन्द' उंडेलते हैं, हर एक पर उसकी क्षमता के अनुसार।

—श्रीमां



**अतिमानसिक प्रकाश की ओर मुड़ी हुई चेतना**

वह सत्य के लिए उत्सुक है और अपनी सन्तुष्टि केवल सत्य में ही पायेगी।

(श्रीमां द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

## दो जगत्‌ों के बीच शरीर सेतु बन गया

विजय-गीत : वह सम्पन्न हो चुका

(१२ अप्रैल १९६२ की रात की अनुभूति)

अचानक रात को मैं इस पूर्ण अभिज्ञता के साथ जगी जिसे हम 'जगत् का योग' कह सकते हैं। परम प्रभु का प्रेम महान् स्पन्दनों द्वारा अभिव्यक्त हो रहा था और, हर स्पन्दन जगत् को उसकी अभिव्यक्ति में और अधिक आगे ले जा रहा था। वे शाश्वत अलौकिक भागवत प्रेम के महान् स्पन्दन थे, केवल भागवत प्रेम के। भागवत प्रेम का हर स्पन्दन जगत् को उसकी अभिव्यक्ति में और अधिक आगे ले जा रहा था।

और उसके साथ यह निश्चिति थी कि जो होना था हो गया है और यह कि अतिमानसिक अभिव्यक्ति चरितार्थ हो गयी है।

सब कुछ निर्वैयक्तिक था, कुछ भी व्यक्तिगत न था।

यह चलता रहा, चलता रहा, चलता ही रहा।

यह निश्चिति कि जो होना था **हो चुका**।

मिथ्यात्व के सभी परिणाम विलीन हो गये थे : मृत्यु एक भ्रान्ति थी, बीमारी एक भ्रान्ति थी, अज्ञान एक भ्रान्ति थी—ऐसी चीज जिसमें कोई वास्तविकता न थी, जिसका कोई अस्तित्व न था। केवल 'प्रेम', 'प्रेम', 'प्रेम' और 'प्रेम'—असीम, महान्, अलौकिक जो हर चीज को अपने में समाये हुए था।

उसे जगत् में कैसे अभिव्यक्त किया जाये? वह विरोध के कारण असम्भव-सा था। लेकिन फिर यह आया : "तुमने स्वीकार कर लिया है कि जगत् को अतिमानसिक सत्य जानना चाहिये...और वह पूरी तरह से, सर्वांगीण रूप में अभिव्यक्त होगा।" हां, हां...।

और चीज **हो गयी**।

(लम्बा मौन)

व्यक्तिगत चेतना वापस आ गयी : एक तरह के सीमाबन्धन का भाव, दर्द का सीमाबन्धन; कोई व्यक्ति नहीं उसके बिना।

'विजय' के बारे में सुनिश्चित, हम फिर से रास्ते पर बढ़ चले।

आकाश 'विजय' के गीतों से गूँज रहे हैं।

केवल दिव्य सत्य का ही अस्तित्व है; केवल वही अभिव्यक्त किया जायेगा। आगे बढ़ो!

हे प्रभो, परम विजेता! तेरी जय हो!

(मौन)

अब चलो, काम पर।

धैर्य, सहिष्णुता, पूर्ण समता, और निरपेक्ष श्रद्धा।

(मौन)

अगर मैं अनुभूति के साथ तुलना करूँ तो जो मैं कह रही हूँ वह कुछ नहीं है, कुछ नहीं, कुछ नहीं, शब्दों के सिवा बिलकुल कुछ भी नहीं।

और हमारी चेतना एक ही है, एकदम परम प्रभु की चेतना के समान है। कोई भेद न था, कोई भेद न था। हम तत् हैं, हम तत् हैं, हम तत् हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ४३३-३४

## प्रतिज्ञा सम्पन्न हुई

(श्रीमां १२-१३ अप्रैल १९६२ की अपनी अनुभूति सुनाती हैं)

मैं 'उद्गम' में थी— मैं ही उद्गम, यानी उत्पत्ति-स्थल थी। दो घण्टों से भी अधिक समय तक यहां, इसी बिस्तर पर, सचेतन रूप से, मैं थी 'मूल उद्गम'। और वह चीज झोंकों में आयी—विशाल झोंकों के रूप में जिनका अन्त विस्फोट में होता था। और इनमें से प्रत्येक झोंका विश्व के जितना विशाल था।

वह था, अपने परम सारतत्त्व में 'प्रेम'—जिसका उस शब्द से एकदम कोई लेना-देना नहीं था जिसे इस दुनिया में लोग सामान्यतः प्रेम के रूप में समझते हैं।

और प्रेम के सारतत्त्व का प्रत्येक झोंका विभाजित होकर चारों तरफ फैल रहा था... लेकिन इनमें शक्तियों का फैलाव नहीं था। यह सब शक्तियों के राज्य से बहुत परे की चीज थी। हम जिस विश्व को जानते हैं उसका अस्तित्व ही न था! बस अस्तित्व था तो विश्व के सत्य का, रंगों

के उन झोंकों का—वे झोंके रंगीन थे—रंगों से भरे झोंके, कहा जा सकता है कि वे ही थे रंगों के उद्गम।

वह भव्य था, सचमुच अलौकिक। मैं सचेतन रूप से दो से अधिक घण्टों तक उसमें रही।

और एक 'आवाज' मुझे सब कुछ समझा रही थी (ठीक-ठीक आवाज नहीं, बल्कि कोई ऐसी वस्तु जो श्रीअरविन्द का उद्गम थी, मानों 'परम उद्गम' का नवीनतम झोंका हो)। और जैसे-जैसे अनुभूति होती गयी, उस 'आवाज' ने प्रत्येक झोंके का, विश्व के प्रत्येक विस्तार का अर्थ मुझे समझाया; यहां तक कि उसने यह भी समझाया कि विश्व ऐसा कैसे बन गया (श्रीमां उलटाव की क्रिया करती हैं) : विश्व कैसा विकृत हो गया! और मुझे रह-रह कर आश्चर्य हो रहा था कि यह भला सम्भव कैसे हुआ, मूल में उस चेतना, उस परम 'चेतना' के होते हुए आज के इस वर्तमान विकृत विश्व के साथ ताल-मेल बिठलाना कितना कठिन लग रहा था! उस परम 'चेतना' के साथ सम्पर्क खोये बिना इस विश्व के साथ सम्बन्ध रखना—एक साथ ये दोनों बातें असम्भव थीं। और इसी समय मानों उस 'आवाज' ने मुझे मेरी प्रतिज्ञा की याद दिलायी, यह कि मैंने धरती पर 'कार्य' करने की प्रतिज्ञा की थी और वह सम्पन्न होकर रहेगा। "मैंने कार्य करने की प्रतिज्ञा की थी और वह सम्पन्न होकर रहेगा।"...

उसके पहले तक (१३ अप्रैल), मैंने कई सारी चीजें सीखीं, लेकिन वह सब मैंने बाड़ के इस पार रह कर सीखा। अब मैं बाड़ के उस पार पहुंच गयी हूं। पूरी तरह से नहीं, लेकिन बहुत अधिक अंश में...

एक शिष्य के साथ वार्तालाप

४ जुलाई १९६२

## अन्तिम विजय 'प्रभु' की होगी

अब तक मैं इसलिए जीवित हूं क्योंकि परम प्रभु मुझे जीवित रखना चाहते हैं, नहीं तो मैं कब की चली गयी होती।

मैं अब अपने शरीर में नहीं हूं। मैंने उसकी देखरेख भगवान् के हाथों में सौंप दी है, वे ही निश्चय करेंगे कि उसे अतिमानसिक होना है या नहीं। मैं जानती हूं और मैंने कह भी दिया है कि यह अन्तिम युद्ध है। यह शरीर जिस उद्देश्य के लिए जी रहा है अगर उसे चरितार्थ होना है, यानी



अतिमानसिक रूपान्तर की ओर पहले चरण रखने हैं, तो यह आज जीना जारी रखेगा। यह परम प्रभु का निश्चय है। मैं पूछ तक नहीं रही कि उनका निश्चय क्या है। अगर शरीर युद्ध को सहने में अक्षम हो, अगर उसे विघटित होना पड़े, तो मानवजाति बहुत ही संकट-काल से गुजरेगी। जो आसुरिक शक्ति श्रीअरविन्द का रूप धरने में सफल हुई है वह अतिमानसिक सिद्धि के नाम पर एक नये धर्म या विचार का निर्माण करेगी जो शायद क्रूर, दयाहीन हो। लेकिन सबको यह जानना चाहिये कि यह सच नहीं है, यह श्रीअरविन्द की शिक्षा नहीं है, उनकी शिक्षा का सत्य नहीं है। श्रीअरविन्द का सत्य प्रेम, प्रकाश और करुणा का सत्य है। वे मंगलकारी हैं, महान् हैं, अनुकम्पा के आगार हैं और भगवान् हैं। और अन्तिम विजय उन्हीं की होगी।

अब, अगर व्यक्तिगत रूप से तुम सहायता करना चाहते हो तो तुम्हें बस प्रार्थना करनी होगी। परम प्रभु जो चाहेंगे वह होगा। वे जो चाहेंगे, इस शरीर से वही करायेंगे...

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १५, पृ. ४३१

### एक नये प्रकार की मृत्यु

आज सवेरे मुझसे कुछ कहा गया (मेरे ख्याल से वह आज सवेरे की बात है या कल रात की, मुझे याद नहीं); वह शरीर से कहा गया था, मुझसे नहीं। शरीर से कहा गया कि जब तक उसका पूर्ण शुद्धीकरण नहीं हो जाता, तब तक वह बना रहेगा, और शुद्धीकरण हो जाने के बाद उसे चुनाव करने की छूट होगी कि वह कार्य को जारी रखे या... समझ रहे हो, कोषाणुओं की दृष्टि से एक बार शरीर सम्पूर्ण शुद्धि प्राप्त कर ले (वह नहीं जिसे मनुष्य भौतिक “शुद्धि” कहते हैं, यह वह नहीं है), भागवत प्रभाव के दृष्टिकोण से शरीर शुद्ध हो जाये, यानी जब शरीर का प्रत्येक कोषाणु केवल, और केवल ‘परम प्रभु’ के प्रभाव तले रहेगा (अभी वही कार्य किया जा रहा है), शरीर से कहा गया कि वह कार्य किया जायेगा, और एक बार वह सम्पन्न हो जाये तो पूरी तरह से ‘परम प्रभु’ के प्रभाव से निर्देशित वह स्वयं यह निश्चय करेगा कि वह जारी रहना चाहता है या विलीन हो जाना चाहता है। यह बहुत ही रुचिकर था, क्योंकि... विलीन

का अर्थ है छितराव, लेकिन छितराव (यह समझना आसान है) है—चेतना को बहुत ही बड़े पैमाने पर फैलाना। अतः, कोषाणुओं को यह चुनाव दिया जायेगा कि या तो उस तरीके से क्रिया करें (फैलाव की मुद्रा) या सञ्चय की क्रिया करें (श्रीमां मुट्टी बांधती हैं)।

यह पहली बार है कि समस्या को उस कोण से देखा गया है, यानी, व्यापक कर्म के दृष्टिकोण से।

*प्रश्न : लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा कि छितराव... अगर छितराव हो जाये, अगर सब कुछ फैल जाये तो सारा कार्य बिखर जायेगा, है न?*

नहीं, प्रत्येक कोषाणु पूरी तरह से सचेतन है।...

स्पष्ट रूप से (बाहरी तर्क के अनुसार) एक नये प्रकार की मृत्यु सम्भव होगी—तब उस तरह मृत्यु न होगी जैसी हम देखते हैं।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप

३१ जुलाई १९६३

### **अतिमानसिक शक्तियों का सशक्त प्रवेश**

*(२६ और २७ अगस्त १९६८ की रात)*

*“शरीर में सब जगह, एक साथ अतिमानसिक शक्ति का सशक्त और लम्बे समय तक प्रवेश...”*

शरीर के अन्दर प्रवेश। हां, धारा का शरीर में प्रवेश। यह कई बार हो चुका था, पर उस रात (यानी परसों रात), यह अचानक हुआ, मानों बस एक अतिमानसिक वातावरण ही हो, उसके सिवाय कुछ नहीं। और मेरा शरीर उसमें था। वह अन्दर प्रवेश करने के लिए एक ही समय सब जगह, सब जगह, सब जगह दबाव डाल रहा था—सब जगह। तो यह प्रवेश करने वाली कोई धारा नहीं थी : यह तो वातावरण था जो हर जगह से प्रवेश कर रहा था। यह कम-से-कम चार-पांच घण्टे तक चलता रहा। केवल एक ही भाग था जिसमें उसने **नहीं के बराबर** प्रवेश किया था, यहां से यहां तक (माताजी गले और सिर के ऊपरी भाग के बीच संकेत करती

हैं) : वहां वह भूरा-सा और निस्तेज दीख रहा था, मानों धारा वहां पर कम प्रवेश कर रही थी...। लेकिन उसके सिवा, बाकी सब, सब...वह प्रवेश करता गया, करता गया, करता गया...! मैंने ऐसी चीज कभी नहीं देखी थी, कभी नहीं! यह घण्टों रही—घण्टों, पूरी तरह सचेतन रूप में।

तो जिस समय यह चीज आयी और जितने समय रही, उस सारे समय मैं सचेतन रही : “आह! इसके लिए था, इसके लिए था; यह था, तो यह था जो ‘तुम’ मुझसे चाहते थे, हे प्रभो! इसके लिए, इसके लिए, ‘तुम’ यह चाहते थे।” उस समय मुझे ऐसा लगता था कि कुछ होने को है।...

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. १२९-३०

श्रीअरविन्द जिसे “आकार” कहते हैं वह भौतिक शरीर है। तो मैंने प्रभु से पूछा कि जब वे भौतिक शरीर का रूपान्तर करना चाहते थे तो उन्होंने क्या किया और कल रात उन्होंने मुझे दो अन्तर्दर्शनों द्वारा जवाब दिया।

एक का सम्बन्ध शारीरिक चेतना की मृत्यु-सम्बन्धी सभी रूढ़ियों से मुक्ति के साथ था और दूसरे में उन्होंने मुझे यह दिखाया कि अतिमानसिक शरीर कैसा होगा। देखते हो न, कि मैंने उनसे पूछ कर अच्छा ही किया! ९.५.१९७०

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १०, पृ. ४१४

(श्रीमां के प्रयाण के बाद)

मधुर मां, आपका भौतिक शरीर पुरानी सृष्टि का था क्योंकि आप अपने बच्चों के साथ एक होना चाहती थीं। आप चाहती थीं कि आपका यह शरीर ‘नये शरीर’ का आधार बने, इसी को नींव बना कर आप उस नये शरीर की रचना कर रही थीं और आपके इस शरीर ने आपकी पूरी सेवा की। आप अपने नये शरीर में आयेंगी। जगत् की पुकार और अभीप्सा, प्रेम तथा आपके बच्चों का निवेदन कृतज्ञता के साथ आपके चरण-कमलों में प्रणत है।

—नलिनीकान्त गुप्त

# महान् संक्रमण

## रूपान्तरण

मैं जीवन की एक नयी अनुभूति के कगार पर हूँ। दूसरों के बारे में लोगों की सामान्य प्रतिक्रिया, चीजों को देखने का उनका सामान्य-साधारण दृष्टिकोण—यह सब चेतना के अमुक मनोभाव को दर्शाता है। वे चीजों को एक अलग स्तर से देखते हैं। और जब उस दिन मैं श्रीअरविन्द के सूत्रों की व्याख्या कर रही थी तो अचानक मैंने देखा कि मेरा देखने का स्तर और दृष्टिकोण इतना अलग था कि चीजों को देखने-परखने का सामान्य तरीका मुझे एकदम अबोध लगा—तुम आश्चर्य करोगे कि यह कैसे हो सकता है कि वह इतना अलग हो जाये कि मैं बातें समझ ही न पाऊँ! और जब मैं उन सूत्रों की व्याख्या कर रही थी तो मुझे इस तरह का अनुभव हुआ कि यह नया “मनोभाव” सरल-सामान्य तरीके से मेरे अन्दर प्रतिष्ठित हो गया—यह रूपान्तरण के लिए प्रयास न था : यह पहले से ही प्रतिष्ठित रूपान्तर है।

यह अभी तक पूर्ण नहीं है क्योंकि मेरे लिए दोनों क्रियाएं प्रत्यक्ष हैं, लेकिन मुझे पूरा-पक्का विश्वास है कि नया मनोभाव जगत् में स्वयं को भौतिक रूप से प्रकट करने के पथ पर है। तब चीज बहुत रुचिकर हो जायेगी।

यह कुछ-कुछ ऐसा है मानों चेतना के अमुक भाग इल्ली से तितली बनने की—रूपान्तरण की अवस्था में हों।

यह रूपान्तर रास्ते में है। लेकिन प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देने के लिए अभी काफी दूर है। एक बार यह सम्मुख आ जायेगा तो धरती पर कुछ नया सुप्रतिष्ठित हो जायेगा।

(मौन)

मुझसे कहा गया था कि स्वयं कोषाणुओं को स्वतन्त्रता दी जायेगी। तो मेरे उस ध्यान का परिणाम यह था कि अवश्य ही शरीर के कोषाणुओं के समूह की चेतना में भी एक नया तत्त्व उतर आया है—एक नया तत्त्व ... निश्चय ही एक नयी अनुभूति प्रगति के पथ पर है। उसका परिणाम : पिछली रात मुझे शरीर के कोषाणुओं की भव्य अनुभूतियां हुईं, उनकी

जुंखला चलती चली गयी, जिनका मैं इस भाषा में वर्णन नहीं कर सकती।  
वे एक नये अन्तःप्रकाश का आरम्भ थीं।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप

१८ सितम्बर १९६४

### एक नये बोध की देहली पर

कल या परसों, सारे दिन ही, प्रातःकाल से सांयकाल तक कोई वस्तु मुझसे कहती रही : “मैं हूं, मैं पृथ्वी पर मृत्यु की चेतना हूं, या वह चेतना मेरे पास है।” मैं इसे शब्दों में अनूदित करती हूं किन्तु मानों मुझसे ऐसा कहा गया था : “पृथ्वी और भौतिक वस्तुओं के सम्बन्ध में मृत व्यक्ति की यही चेतना होती है...। मैं वह मृत व्यक्ति हूं जो पृथ्वी पर रहता है।” चेतना की स्थिति के अनुसार (क्योंकि चेतना अपनी स्थिति सदा बदलती रहती है), चेतना की स्थिति के अनुसार यह बात यों थी : “इसी प्रकार मृत व्यक्तियों का पृथ्वी के साथ सम्बन्ध है।” फिर : “मैं पूर्णतया उस मृत व्यक्ति के समान हूं जिसका पृथ्वी के साथ सम्बन्ध है।” फिर : “मैं एक मृत व्यक्ति के समान रहती हूं जो पृथ्वी की चेतना में रहता है।” और फिर : “मैं एकदम उस मृत व्यक्ति के समान हूं जो पृथ्वी पर रहता है”... आदि-आदि। मैं अपना काम करती रही, सदा की भांति बोलती और कार्य करती रही। किन्तु बहुत दिनों से ऐसा चल रहा है, बहुत समय से, दो वर्ष से अधिक समय से मैं जगत् को इस प्रकार देख रही थी (ऊपर की ओर संकेत, एक स्तर से दूसरे स्तर की ओर), और अब मैं इसे इस प्रकार देखती हूं (नीचे की ओर संकेत)। मैं नहीं जानती कि इसे कैसे समझाऊं, क्योंकि इसमें मन की कोई चीज नहीं है, और मानस भाव से रहित वेदनों में कोई ऐसी अस्पष्ट-सी वस्तु होती है जिसकी परिभाषा करना कठिन है। किन्तु शब्द और विचार कुछ दूरी पर थे (मस्तिष्क के चारों ओर संकेत करती हैं), एक ऐसी वस्तु के समान जो देखती है और परखती है, अर्थात्, जो वही कहती है जो वह देखती है—वह वस्तु जो आस-पास होती है। और मुझे आज दो-तीन बार यह अनुभूति बड़े सबल रूप में हुई (मेरा मतलब यह है कि यह अवस्था समूची चेतना पर छापी रही—यह एक आभास था या वेदन का बोध—किन्तु यह ऐसा कुछ है नहीं) : मैं एक मृत व्यक्ति हूं जो पृथ्वी पर रहता है।

और इसीलिए, उदाहरणार्थ, जहां तक दृष्टि का सवाल है, बाह्य यथार्थता का वहां अभाव होता है (माताजी आंखों से न देखने का संकेत करती हैं)। मैं चेतना से होकर और उसके द्वारा देखती हूं। सुनने का भी मेरा ढंग बिलकुल दूसरा है। यहां एक प्रकार की “विभेद की क्रिया” होती है—यह “विवेक” नहीं होता—एक ऐसी वस्तु जो बोध में चुनाव करती है, ऐसी वस्तु जो निर्णय करती है—निर्णय करती है, किन्तु यन्त्रवत् नहीं—कि क्या सुना गया है और क्या नहीं सुना गया, क्या देखा गया है और क्या नहीं देखा गया। देखने में तो यह पहले से ही है पर सुनने में यह और भी सबल होती है : किन्हीं वस्तुओं के लिए व्यक्ति केवल एक लगातार होती हुई भनभनाहट ही सुनता है, जब कि कुछ वस्तुओं को वह स्फटिक के समान स्पष्ट रूप में सुनता है; कुछ बड़ी अस्पष्ट-सी होती हैं, मुश्किल से ही सुनायी देती हैं। देखने के साथ भी यही है; मानों सब कुछ एक चमकदार कोहरे के पीछे स्थित हो—अत्यन्त चमकदार, किन्तु है वह एक कोहरा ही, दूसरे शब्दों में, वहां यथार्थता का अभाव है—और फिर अचानक ही एक पूर्णतया यथार्थ एवं स्पष्ट वस्तु सामने आ जाती है, छोटी-छोटी बारीकियों का भी असाधारण रूप से यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। सामान्यतया, यह अन्तर्दर्शन वस्तुओं में स्थित चेतना की अभिव्यक्ति होता है, अर्थात्, प्रत्येक वस्तु अधिकाधिक अन्तरीय प्रतीत होने लगती है, और कम-से-कम बाह्य...। और ये वे अन्तर्दर्शन नहीं होते जो दृष्टि पर थोपे जाते हैं, न ही वह शोरगुल होता है जो सुनने की क्रिया पर लादा जाता है, यह चेतना की एक प्रकार की क्रिया होती है जो किन्हीं वस्तुओं को देखने-योग्य बना देती है और किन्हीं वस्तुओं से एक अतीव धुंधली पृष्ठभूमि का काम लेती है।...

अब खाने की क्रिया को लो, यह एक बड़ी अजीब क्रिया है—बहुत ही अजीब...। यहां ऐसा होता है मानों कोई शरीर की सहायता कर रहा हो—जो कि एक बड़ी यथार्थ और सुनिश्चित वस्तु भी नहीं है, बल्कि कई वस्तुओं से बनाया गया एक संघात है जो संघटित हो गया है—और तब जो घटता है... उसकी वह सहायता करता है! नहीं, सचमुच यह एक बड़ी अजीब-सी स्थिति है। आज यह बड़ी शक्तिशाली थी, पूरी चेतना पर इसका आधिपत्य था। साथ ही कुछ ऐसे क्षण होते हैं जब कि व्यक्ति को यह अनुभव होता है कि एक बड़ी तुच्छ-सी बात सम्पर्क को छिन्न-भिन्न कर

देती है (गांठ खोलने का संकेत, मानों शरीर के साथ का बन्धन टूट गया हो), और जब व्यक्ति अत्यधिक अविचल और अत्यधिक उदासीन—हां, उदासीन—रहे तभी यह सम्बन्ध बना रह सकता है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १०, पृ. २६३-६५

## शरीर का पूर्ण समर्पण

इन अनुभूतियों के पहले सदा व्यक्ति को भागवत उपस्थिति के साथ एक बड़ी अन्तरंग और अन्तर्मुखी निकटता का अनुभव होता है, इस सुझाव के सहित : “क्या तुम किसी भी बात के लिए तैयार हो?” स्वभावतया मैं कहती हूं : “किसी भी बात के लिए।” और वह ‘उपस्थिति’ इतने चमत्कारिक रूप से तीव्र हो जाती है कि समूची सत्ता में एक प्रकार की प्यास-सी जाग उठती है, कि वह सदा उपस्थित रहे! तब केवल उसी का अस्तित्व रहता है, केवल उसी वस्तु के अस्तित्व का हेतु है। इस सबके दौरान सुझाव आता है : “क्या तुम किसी भी बात के लिए तैयार हो?”

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १०, पृ. २६५

## केवल परम प्रभु के लिए शरीर जीता है

यह केवल एक संक्रमण-काल ही है।

चेतना के दृष्टिकोण से यह एक बहुत बड़ी प्राप्ति है! कारण, बाह्य वस्तुओं की समस्त दासता, उनके साथ समस्त बन्धन समाप्त हो जाते हैं, बिलकुल छूट जाते हैं—हां, बिलकुल छूट जाते हैं और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में, केवल ‘वे’ ही रह जाते हैं, सर्वोच्च स्वामी, जो प्रभु हैं। इस दृष्टिकोण से यह प्राप्ति के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। यह एक इतनी मौलिक उपलब्धि है...। यह स्वतन्त्रता की चरम पूर्णता प्रतीत होती है, एक ऐसी वस्तु जिसे चरितार्थ करना व्यक्ति के लिए पृथ्वी पर सामान्य जीवन व्यतीत करते हुए असम्भव माना जाता है।

यह पूर्ण स्वतन्त्रता की अनुभूति के समान है जिसे व्यक्ति तब अपनी सत्ता के उच्चतर भागों में प्राप्त करता है जब वह शरीर पर निर्भर नहीं होता। किन्तु जो बात विशेष महत्त्वपूर्ण है, वह यह है (मैं इस पर जोर दे रही हूं), यह शरीर की चेतना है जो इन अनुभवों को प्राप्त करती है, और

यह एक शरीर ही है जो अभी तक दृश्य रूप में यहां है।

स्पष्ट ही, यहां वैसा और कुछ नहीं है जो मानवीय सत्ताओं को “जीवन में भरसा” प्रदान करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाह्य जगत् से कोई भी सहारा नहीं रहा, कुछ भी नहीं... सिवा सर्वोच्च ‘संकल्प’ के। यदि इसे सामान्य शब्दों में अनूदित किया जाये तो, हां, तो शरीर में जीवित होने की भावना सिर्फ इसलिए होती है क्योंकि सर्वोच्च प्रभु चाहते हैं कि वह जीवित रहे, अन्यथा वह जीवित नहीं रह सकता था।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १०, पृ. २६६

### केवल ‘एक ही शरीर’ है

इन दिनों, कल या परसों, इस प्रकार की एक अनुभूति हुई : एक प्रकार की पूरी तरह से विकेंद्रित चेतना (मैं हमेशा भौतिक चेतना की बात करती हूं, उच्चतर चेतना की बिलकुल नहीं), एक ऐसी विकेंद्रित चेतना जो यहां, वहां, उधर, इस शरीर में, उस शरीर में (उसमें जिसे लोग “यह व्यक्ति” या “वह व्यक्ति” कहते हैं, लेकिन इस धारणा का अब बहुत अस्तित्व नहीं है), तब कोषाणुओं की ओर वैश्व चेतना का मानों हस्तक्षेप-सा हुआ। मानों उसने इन कोषाणुओं से पूछा कि वे इस संयोजन को क्यों बनाये रखना चाहते हैं या यूं कहें, इस समूह या पुञ्ज को क्यों बनाये रखना चाहते हैं? उन्हें समझाया या अनुभव कराया गया कि समय के साथ-साथ तकलीफें कैसे बढ़ेंगी, टूट-फूट, बाहरी कठिनाइयां, और अन्त में रगड़-झगड़ और उपयोग के कारण हास और क्षय—लेकिन यह उन्हें एकदम उपेक्षणीय लगता था। उत्तर इस अर्थ में काफी मजेदार था कि ऐसा लगता था कि वे उच्चतर ‘शक्ति’ के साथ सम्पर्क की क्षमता को बनाये रखने के सिवा और किसी चीज को महत्त्व नहीं देते थे। यह एक अभीप्सा के जैसी चीज थी (स्वाभाविक है कि शब्दों के रूप में न आयी थी), जिसे अंग्रेज़ी में ‘यर्निंग’ (Yearning) या ‘लॉंगिंग’ (longing) कहते हैं, यानी भागवत ‘शक्ति’, ‘सामञ्जस्य की शक्ति’, ‘सत्य की शक्ति’, ‘प्रेम की शक्ति’ के साथ सम्पर्क के लिए ललक या लालसा थी। और इसी कारण वे वर्तमान संयोजन को पसन्द करते हैं।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. ४-५





‘तेरी इच्छा’ पूर्ण हो, मेरी नहीं।  
जैसी ‘तेरी इच्छा’, जैसी ‘तेरी इच्छा’।  
मैं हमेशा के लिए ‘तेरा’ हूँ।

—श्रीमां

## शक्ति का स्थानान्तरण

मृत्यु का अस्तित्व नहीं है

१५ अगस्त से रूपान्तर के लिए तैयारी का पूरा-पूरा काम चल रहा है। इसे क्या नाम दिया जाये?... शक्ति का हस्तान्तरण।...

यह मानों एक प्रकार से निर्देशक संकल्प का स्थानान्तरण है। यहां, भौतिक और द्रव्यात्मक रूप में यह एक आश्चर्य के जैसा है। नये पथ-प्रदर्शन के साथ तादात्म्य की जरूरत है—यह जरा कठिन है। इसे समझाना भी कठिन है... अब यह वही चीज नहीं है जो तुमसे काम करवाती है—“काम करने” का मतलब सब कुछ है, हिलना-डुलना, चलना—सब कुछ। अब यह वही केन्द्र नहीं है। और फिर, अगर तुम आदत के मारे पुराने केन्द्र से चिपके रहना चाहो, तो! इससे एक बड़ी अव्यवस्था पैदा हो जाती है। तुम्हें बहुत ज्यादा सावधानी रखनी चाहिये कि आदत, पुरानी आदत अपने-आपको प्रकट या अभिव्यक्त न कर पाये।...

(मौन)

उदाहरण के लिए, आज सवेरे, कुछ समय के लिए (मुझे पता नहीं कितनी देर के लिए, लेकिन बहुत कम समय नहीं : हो सकता है चौथाई घण्टा या आधा घण्टा हो, मुझे नहीं मालूम), कई बार शरीर के कोषाणुओं को, यानी, शरीर के रूप को यह अनुभूति हुई कि साथ रहना या विलीन हो जाना एक वृत्ति-विशेष पर निर्भर है—किसी वृत्ति या संकल्प पर, किसी ऐसी चीज पर जो वृत्ति और संकल्प दोनों हो। और इस बोध के साथ (कभी-कभी एक ही समय दो चीजों के साथ, जिनमें एक है स्मृति और दूसरी ऐसी चीज जिसे जिया गया है) कि तुम्हें कौन हिला रहा है, काम करवा रहा है, ज्ञान दे रहा है : पुराने तरीके से स्मृति के रूप में, और नये तरीके में स्पष्टतः, अपने चुनाव के बिना विलीन होने का कोई कारण नहीं—उसका कोई अर्थ नहीं, यह एक निरर्थक चीज है : विलीन क्यों हुआ जाये?

और यदि उस समय, जिस समय कोई पीछे गिरता है—यह ठीक ऐसा नहीं है—जब पुरानी चेतना फिर से ऊपरी तल पर आती है, उस समय व्यक्ति बहुत सावधान न हो तो स्वाभाविक है कि मूर्च्छा आ जायेगी।

ओह ! बहुत समय तक, पांच से पौने छः तक, सारे समय ऐसा ही था। और उसी समय यह जीवन की अवास्तविकता का और एक वास्तविकता का, जिसे हम शाश्वत कह सकते हैं, संवेदन होता है : मृत्यु के संवेदन का अस्तित्व ही नहीं रहता, उसका कुछ अर्थ नहीं होता। यह एक चुनाव मात्र होता है। और विस्थापन, उसका तो कोई अर्थ ही नहीं होता, उसके होने का कोई कारण नहीं, वह एक भ्रान्ति है।...

लेकिन पहल करने वाली इस शक्ति के परिवर्तन ने, या यूँ कहें, शक्ति के इस स्थानान्तरण ने मेरे ऊपर एक अनोखी अनुभूति का असर डाला, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। दुर्भाग्यवश, यह बहुत समय नहीं रहा। लेकिन यह अनुभूति शरीर में एक प्रकार की निश्चिति छोड़ गयी है—वह भविष्य के बारे में कम अनिश्चित है। यह अनुभूति मानों यह कहने के लिए आयी थी कि “चीज ऐसी होगी।”

अगर वह बनी रहे तो इसका अर्थ है अमरता।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. १६-१८

### शक्ति के स्थानान्तरण के समय की कठिनाई

सबसे बड़ी कठिनाई स्नायुओं में है, क्योंकि वे सामान्य चेतना के सचेतन संकल्प की इतनी अभ्यस्त हैं कि जब यह बन्द हो जाता है और उच्चतम से उसकी प्रत्यक्ष ‘क्रिया’ की मांग की जाती है तो जैसे वे पागल-सी हो जाती हैं। उस दिन मुझे यह अनुभूति हुई थी जो एक घण्टे से अधिक रही, वह कठिन थी; परन्तु उसने मुझे बहुत, बहुत-सी चीजें सिखायीं। और इस सबको “शक्ति का स्थानान्तरण” कहा जा सकता है। पहले की शक्ति अपने-आपको खींच लेती है और तब शरीर अपने-आपको नयी शक्ति के अनुकूल बना पाये, उससे पहले का समय नाजुक होता है। चूंकि सभी कोषाणु निरन्तर अभीप्सा की अवस्था में होते हैं, इसलिए चीज अपेक्षाकृत जल्दी होती है, फिर भी... मिनट लम्बे होते हैं।

लेकिन कोषाणुओं में एक प्रकार की अधिकाधिक निश्चिति है कि जो कुछ होता है वह इस रूपान्तर और निर्देशक शक्ति के स्थानान्तरण की दृष्टि से ही होता है। जब यह द्रव्यगत रूप में (केवल भौतिक रूप में नहीं : द्रव्यगत दृष्टि से भी) पीड़ादायक होता है, तब भी कोषाणुओं में यह

निश्चिति बनी रहती है। तब वे प्रतिरोध करते हैं, वे अवसाद के बिना पीड़ा सहते हैं, उन पर किसी तरह का असर नहीं होता। उन्हें यह निश्चिति होती है कि यह रूपान्तर की तैयारी के लिए है, कि यह रूपान्तर की प्रक्रिया और निर्देशक शक्ति के स्थानान्तरण के लिए है। जैसा कि मैंने कहा, स्नायुओं में यह अनुभव सबसे अधिक पीड़ादायक होता है, और यह स्वाभाविक है, क्योंकि वे ही सबसे अधिक संवेदनशील कोषाणु हैं, उनमें ही सबसे अधिक संवेदनशीलता है। लेकिन उनमें काफी अधिक, बहुत सहज, स्वाभाविक—बिना किसी प्रयास के—सामञ्जस्यपूर्ण भौतिक स्पन्दनों के प्रति सबल ग्रहणशीलता होती है (जो कि बहुत ही विरल है, किन्तु कई व्यक्तियों में पायी जाती है)। और यह भौतिक स्पन्दन—जिसे **भौतिक शक्ति** कह सकते हैं, सामञ्जस्यपूर्ण भौतिक स्पन्दन (यह सहज सामञ्जस्य बिना किसी मानसिक स्पन्दन के होता है, जैसे उदाहरण के लिए, फूल के स्पन्दन। ऐसे भौतिक स्पन्दन होते हैं जो अपने अन्दर सामञ्जस्यपूर्ण शक्ति का वहन करते हैं), स्नायुएं बहुत अधिक संवेदनशील और इस स्पन्दन के प्रति ग्रहणशील होती हैं। यह स्पन्दन उन्हें तुरन्त ठीक कर देता है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. २०-२१

### चेतना का स्थानान्तरण और नयी कार्य-पद्धति

मैंने “चेतना के स्थानान्तरण” के बारे में जो समझाया था वह विधिपूर्वक, विधिपूर्वक, लगातार, लगातार किया जा रहा है, परन्तु वह... दीखने वाली क्षतियों या हर हालत में, कुछ समय के लिए, क्षमताओं के हास के साथ। लेकिन दर्शन और श्रवण के बारे में यह एक अजीब बात है : समय-समय पर वे स्पष्ट होते हैं, इतने स्पष्ट, जितने हो सकते हैं और समय-समय पर एकदम अवगुण्ठित। और उसका एक और ही बहुत, बहुत स्पष्ट स्रोत है—प्रभाव का अन्य स्रोत। मुझे लगता है कि मैं ठीक-ठीक, स्पष्ट देख पाऊं इसमें कई महीने लग जायेंगे। बहरहाल, सामान्य चेतना (सिर के ऊपर इशारा) जिसे वैश्व चेतना कह सकते हैं (पार्थिव चेतना तो कह ही सकते हैं), एक मिनट के लिए भी—एक मिनट के लिए भी नहीं हिली है। वह सारे समय बनी रही।...

यह एक नयी कार्य-पद्धति है। यह अत्यन्त रोचक है।

क्या सत्ताओं और घटनाओं के बारे में आपका बोध बदला है? क्या आपका देखने का तरीका बदला है?

हां, बिलकुल—बिलकुल। बहुत अजीब है...। वास्तव में इस सारे समय का उपयोग भौतिक सत्ता की चेतना को विकसित करने में हुआ है। और यह भौतिक सत्ता (माताजी अपने शरीर को छूती हैं), ऐसा लगता है कि इसे किसी और चेतना के लिए तैयार किया गया है, क्योंकि ऐसी चीजें हैं... इसकी प्रतिक्रियाएं बिलकुल भिन्न हैं, इसकी वृत्ति भिन्न है। मैं पूर्ण उदासीनता की अवधि में से होकर निकली हूं जब जगत् का मतलब कुछ न था, उसका अर्थ कुछ न था। और धीरे-धीरे मानों उसमें से एक नया बोध निकला। वह अभी मार्ग में ही है...

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. २६१-६२

### नये सम्भवन का तरीका...

... ऐसा लगता है कि रूप की कठोरता इस नये सम्भवन के तरीके के लिए जगह करती जा रही है। लेकिन हम जानते हैं कि पहला सम्पर्क हमेशा बहुत “आश्चर्यजनक” होता है, लेकिन धीरे-धीरे शरीर अभ्यस्त हो जाता है। एक विधि से दूसरी में जाने का संक्रमण-काल जरा कठिन होता है। वह बहुत धीरे-धीरे क्रमशः किया जाता है, फिर भी, एक क्षण होता है (संक्रमण का क्षण), कुछ सेकेण्ड जो... जो, कम-से-कम हम यही कह सकते हैं कि “अप्रत्याशित” होते हैं।

इस प्रकार सभी आदतें मिटा दी जाती हैं और सभी क्रियाओं के बारे में भी यही बात है : रक्त-सञ्चार के लिए, पाचन के लिए, श्वासोच्छ्वास के लिए—सभी के लिए यही बात है। और संक्रमण के समय एक दूसरे का स्थान अचानक नहीं ले लेता, लेकिन दोनों के बीच एक तरल अवस्था होती है, और वह कठिन है। केवल एक महती ‘श्रद्धा’ जो पूर्णतया अडिग, प्रकाशमान, नित्य, निर्विकार हो—परम ‘प्रभु’ की वास्तविक सत्ता में, परम ‘प्रभु’ की **एकमात्र** वास्तविक सत्ता में श्रद्धा ही सबको इस योग्य बनाती है कि वे वह-के-वही दीखते हुए चलते चले जायें।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. ६०-६१

## अतिमानव का अवतरण

### पृथ्वी और मानवता के लिए नयी चेतना

पहली तारीख (१ जनवरी १९६९) को सवेरे सचमुच आश्चर्यजनक बात हुई...। केवल मैंने ही उसे अनुभव नहीं किया, औरों ने भी अनुभव किया है। वह ठीक आधी रात के बाद था, लेकिन मैंने दो बजे अनुभव किया और औरों ने सवेरे के चार बजे। वह... पिछली बार मैंने तुमसे उसके बारे में बस दो शब्द कहे थे, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि मैं जिसकी आशा कर रही थी उसके साथ इसका जरा भी मेल न था (मैं किसी चीज की आशा नहीं कर रही थी), मैंने जिन दूसरी चीजों को अनुभव किया था उनके साथ इसका मेल न था। यह बहुत ज्यादा द्रव्यात्मक वस्तु थी, यानी, बहुत बाहरी, और वह स्वर्णिम ज्योति से दीप्तिमान थी। वह बहुत ही बलशाली थी; लेकिन उसका स्वभाव स्मितपूर्ण हितैषिता का था, शान्त हर्ष और एक प्रकार से हर्ष और ज्योति की ओर एक प्रकार का उद्घाटन। वह “शुभ नव वर्ष” की तरह शुभ कामना थी।...

... एक प्रकार का हर्ष, लेकिन मैत्रीपूर्ण हर्ष, शक्तिशाली, और... ओह! बहुत, बहुत कोमल, बहुत स्मितपूर्ण, **बहुत हितैषितापूर्ण**...।

... मुझे ऐसा लगा कि कोई बहुत बड़ा व्यक्तित्व है—बहुत ही बड़ा, यानी, ऐसा जिसके लिए समस्त धरती छोटी-सी है, धरती इतनी छोटी (माताजी हथेली में गेंद पकड़ने की मुद्रा करती हैं), गेंद जैसी—एक विशालकाय व्यक्तित्व, बहुत, बहुत सद्भावनापूर्ण, जो आता है... (माताजी हथेली पर से गेंद को बहुत धीमे-से उठाती हुई प्रतीत होती हैं)। उससे सगुण भगवान् की छाप पड़ती थी (और फिर भी... पता नहीं), सहायता के लिए जो आता है, इतना बलवान्, इतना बलवान् और साथ-ही-साथ इतना कोमल, सबको अपने आलिंगन में भरता हुआ। और वह बहुत बाहरी था : शरीर ने उसे सब जगह अनुभव किया, सब जगह (माताजी अपने चेहरे को, हाथों को छूती हैं), सब जगह।...

साल का प्रारम्भ था। ऐसा था मानों कोई देवाकार (यानी, कोई) “शुभ नव वर्ष” की कामना करने आया था और उसमें वर्ष को शुभ बनाने की पूरी शक्ति थी। क्या यह अतिमानसिक व्यक्तित्व है?... जो उन

सबमें अवतरित होगा जिनके पास अतिमानसिक शरीर होगा।...

वह दीप्तिमान, मुस्कराता हुआ, शक्ति से मण्डित कितना सद्भावनापूर्ण था; यानी, सामान्यतः मनुष्य के अन्दर सद्भावना एक दुर्बल चीज होती है, इस अर्थ में कि वह युद्ध को पसन्द नहीं करती, लड़ना नहीं चाहती; लेकिन यह उस तरह का न था! एक ऐसी सद्भावना जो बाधित करती है (माताजी दोनों हाथों की मुट्टियाँ कुरसी के हथ्यों पर उतारती हैं)। मुझे इसमें दिलचस्पी हुई क्योंकि यह बिलकुल नया है। और इतना ठोस!...

क्या वह कोई ऐसी चीज है जो उन शरीरों में व्याप्त हो जायेगी जो तैयार हैं?

हां, मेरा ख्याल है, हां। मुझे लगता है कि यह वही संरचना है जो उन शरीरों में... जो अतिमानस के शरीर होंगे, प्रवेश करेगी—अपने-आपको प्रकट करेगी—प्रवेश करेगी और प्रकट करेगी। या शायद... शायद अतिमानव, मुझे नहीं मालूम। दोनों के बीच मध्यस्थ। शायद अतिमानव : वह बहुत ज्यादा मानवीय था परन्तु, मुझे कहना चाहिये, दिव्य अनुपातों में मानव। एक ऐसा मानव जिसमें दुर्बलताएं और परछाइयां न थीं : पूरा प्रकाशमय—पूर्ण प्रकाशमय और मुस्कराता हुआ... साथ ही मधुरता भी। हां, शायद अतिमानव। —‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. १५८-६१

### शरीर के लिए परामर्शदाता

उसके अन्दर एक चेतना है—एक बहुत ही मूल्यवान् वस्तु—जो शरीर को पाठ पढ़ाती है, उसे सिखाती है कि उसे क्या करना चाहिये, यानी, उसे कैसी वृत्ति अपनानी चाहिये, उसमें कैसी प्रतिक्रिया होनी चाहिये...। मैं तुमसे बहुत बार कह चुकी हूं कि जब कोई निर्देश देने वाला न हो तो रूपान्तर की प्रक्रिया का पता लगाना बहुत कठिन है; तो यह मानों उसका उत्तर था; वह शरीर से यह कहने आया : “यह वृत्ति अपनाओ, यह करो” और अब शरीर सन्तुष्ट है, अब वह कोई भूल नहीं कर सकता।...

वह “पथ प्रदर्शक” की तरह आया, वह व्यावहारिक था, बिलकुल व्यावहारिक : “यह चीज, इसे त्यागना चाहिये; उसे स्वीकारना चाहिये; इसे व्यापक बना दो, उसे...” सभी आन्तरिक गतियां। और यह बहुत द्रव्यात्मक

भी बन जाता है, इस अर्थ में कि वह कुछ स्पन्दनों के बारे में कहता है : “तुम्हें इसे प्रोत्साहन देना चाहिये,” कुछ औरों के लिए : “इसे सरणीबद्ध करना चाहिये,” और फिर कुछ के लिए : “उसे निकाल बाहर करना चाहिये।” इस तरह के छोटे-छोटे निर्देश।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. १६३

### शुभचिन्तक शक्ति तथा शान्ति

यह बड़ी अजीब बात है। मनुष्य के सभी गुण और सभी त्रुटियां बचकानी—मूर्खता-भरी—लगती हैं। यह अजीब बात है। और यह कोई विचार नहीं है, यह ठोस संवेदन है। यह निर्जीव द्रव्य की तरह है। सभी सामान्य वस्तुएं जीवनहीन द्रव्य हैं, **सच्चे** जीवन से वञ्चित। कृत्रिम और मिथ्या। यह अजीब है। यह इतना अधिक औरों में नहीं है, ऐसी बात नहीं है : यह एक आन्तरिक प्रशिक्षण है। और यह सत्य ‘चेतना’, यह सत्य ‘वृत्ति’ एक ऐसी चीज है जो अत्यन्त बलवान् है, इतनी मुस्कुराती हुई **शान्ति** में शक्तिशाली है! इतनी मुस्कुराती हुई कि व्यक्ति गुस्सा नहीं कर सकता, यह एकदम असम्भव है... इतनी मुस्कुराती हुई, और देखती हुई।

इस नयी चेतना की खास विशिष्टता है : कोई अधिकचरा काम नहीं, कोई “लगभग” नहीं। यह इसकी विशेषता है। यह विचार : “हां, हम इसे करेंगे और थोड़ा-थोड़ा करके हम...”—नहीं, नहीं, ऐसा नहीं; या तो “हां” या “नहीं”, या तो तुम कर सकते हो या नहीं। सचमुच यह मानों भागवत ‘कृपा’ है : समय न खोना... समय न खोना। लेकिन यह दुर्जेय ‘शक्ति’, सबसे बढ़ कर यही है; और यह करुणा से भरी है! भद्रता से भरी है!... नहीं, कोई शब्द नहीं हैं, हमारे पास ऐसे शब्द नहीं हैं जो उसका वर्णन कर सकें, और कुछ नहीं, नहीं, सिर्फ एकाग्र रहना और... वह आनन्दपूर्ण है। कुछ नहीं, केवल अपने ध्यान को उस दिशा में मोड़ना, तुरन्त आनन्द ही आनन्द। और मैं समझती हूं (इसने मुझे अमुक चीजें समझा दी हैं), हमने ऐसे लोगों के बारे में सुना है जो अत्यधिक उत्पीड़न के बीच आनन्द का अनुभव करते थे—यह वैसा ही है। एक आनन्द।

यह लो, वह यही है (मां “कृपा”—सफेद जवाकुसुम—फूल देती हैं)।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. १६९-७०



# अमरता की चेतना

## सच्ची अमरता

आरम्भ में, जब मेरे अन्दर अमरता की चेतना आनी शुरू हुई और जब मैंने अमरता की इस सच्ची चेतना और उसके बारे में मानवीय धारणा (जो एकदम से अलग है) को एक साथ रख कर देखा, तब मैंने इतने स्पष्ट रूप में देखा कि जब मनुष्य अपनी कल्पना के सहारे, जिसे वह “अमरता” कहता है (यानी समय की अनन्त अवधि), उसमें स्वयं को प्रक्षिप्त करता है तो वह केवल अपने-आपको नहीं देखता बल्कि अनिवार्य रूप से और हमेशा अपने साथ-साथ वह उन सभी चीजों की राशि को भी समेट लेता है जो जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं और वह अपने जीवन की वर्तमान चेतना को भी उसमें सम्मिलित कर लेता है। और तब मैंने कई लोगों पर यह परीक्षण किया; मैंने उनसे कहा, “माफ करना, लेकिन जरा सोचो कि किसी विशेष अनुशासन या किसी विशेष कृपा के द्वारा अगर तुम्हारा जीवन अनन्तकाल तक चलता रहे तब तुम उस अनिश्चित भविष्य में जिन चीजों का सबसे अधिक विस्तार करना चाहोगे वे होंगी तुम्हारे जीवन की परिस्थितियां, यह विशाल रचना जो तुमने अपने चारों ओर बनायी है—यानी वे लोग, वे सम्बन्ध, वे क्रियाएं, सजीव और निर्जीव चीजों का वह सारा संग्रह—इन्हीं को तो रखना चाहोगे न?

“लेकिन इन सब चीजों को, जैसी वे हैं, विस्तृत नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रत्येक चीज निरन्तर चलती रहती है! और अमर होने के लिए तुम्हें इस निरन्तर बदलाव का अनुसरण करना होगा; अन्यथा, स्वाभाविक रूप से वही होगा जो अब हो रहा है—एक दिन तुम मर जाओगे क्योंकि तुम बदलाव के साथ चलने में असमर्थ होओगे। तब तुम्हारी सारी रचना भी संग-संग ढह जायेगी! यह समझ लो कि वह जो तुम्हें बनाये रखेगी वह तुम्हारे अन्दर की कोई ऐसी चीज है जिसे तुम भली-भांति नहीं समझते, लेकिन यही एकमात्र चीज है जो बनी रहती है—बाकी सभी चीजें समय के साथ-साथ झड़ती चली जाती हैं... क्या तुम अब भी अमर बनना चाहते हो?” दस में से एक ने भी हामी नहीं भरी!... एक बार तुम उन्हें चीज को सुनिश्चित रूप से अनुभव करा सको, वे तुमसे कहते हैं, “ओह नहीं!

ओह नहीं! चूँकि बाकी सब कुछ बदल रहा है तो स्वयं शरीर भी क्यों न बदले! क्या फर्क पड़ेगा?” लेकिन जो बना रहता है वह ‘तत्’ है; सचमुच ‘उसे’ ही तुम्हें कस कर पकड़े रखना है—लेकिन तब तुम्हें भी अन्ततः ‘तत्’ बनना होगा, विभिन्न वस्तुओं की वह राशि नहीं। तुम जिसे ‘मैं’ कहते हो वह ‘तत्’ नहीं है, वह तो वस्तुओं का एक ढेर-मात्र है...

एक शिष्य के साथ वार्तालाप

१५ नवम्बर १९६०

## कोषाणुओं का योग

मैं एक कोषाणु को लेती हूँ (श्रीमां अपनी अंगुलियों से मुद्रा करके दिखाती हैं), एक बहुत छोटा कोषाणु, इस तरह का, एकदम से सूक्ष्म, जिसे निरी आंखों से नहीं देखा जा सकता, लेकिन मेरे अन्दर वह क्षमता और वह दृष्टि है। इस तरह, मैं एक छोटे-से कोषाणु को लेती हूँ, और इसे ‘भागवत चेतना’ के रूपान्तरकारी प्रकाश की ओर खोलती हूँ। तब मैं इसे भगवान् के अक्षय आनन्द से, उनकी अकम्प शान्ति से पूरित करती हूँ और भागवत वास्तविकता की ‘दीप्तिमयी शक्ति’ से सज्जित करती हूँ। इस तरह यह भगवान् के सब रूपों से भरा-पूरा हो जाता है : प्रकाश उनके ज्ञान से, आनन्द भागवत प्रेम से, शान्तिपूर्ण शुभ्रता से और शक्ति उस सहनशक्ति से जो अनन्तकाल तक सहे जा सकती है जब तक कि वह परम संकल्प में विलीन न हो जाये। ऐसे करती हूँ मैं; मैं प्रत्येक कोषाणु को इस भागवत चेतना से पूरित करती हूँ और फिर दूसरा लेती हूँ, फिर दूसरा और फिर दूसरा। इसी तरीके से सबको पूरित करती जाती हूँ।

इन कोषाणुओं से एक भास्वर चेतना स्पन्दित होती है, फूटी पड़ती है। जो तैयार हो जाते हैं उन्हें इकट्ठा करके मैं अलग रख देती हूँ और जिन्हें मैंने अभी छुआ नहीं है उनमें और इनमें अन्तर को जांचती हूँ। कितने अलग होते हैं ये, तुलना करने पर कितने अवास्तविक, दूसरे इस स्थिति को अनुभव करने लगते हैं और शरीर मुस्कुराता है और सचेतन हो जाता है। कोषाणु ऐक्य का अनुभव करने लगते हैं और सबसे अधिक हैरानी तो तब होती है जब मैं रूपान्तरित और अरूपान्तरित कोषाणुओं में अन्तर देखती हूँ। तुलना करना असम्भव है! पुराने कोषाणुओं में, अर्थात् जो अभी भी अतीत से चिपके हैं, केवल एक क्षीण-सी आभा होती है, भगवान्

की चिनगारी मात्र, जब कि 'अतिमानसिक चेतना' से सज्जित कोषाणुओं में आत्मा के 'आनन्द' का बोध होता है, 'जड़द्रव्य' की आत्मा का, जो हजारों वर्षों की निश्चेतन तन्द्रा के बाद अंगड़ाई ले रही है। जड़ में इसका आविर्भाव इतना जीवन्त, इतना वास्तविक और इतना स्पष्ट है कि यदि इस आनन्द का लव-मात्र भी किसी को चखने दिया जाये तो वह इस असाधारण परीक्षण का अनुसरण करने के लिए सारी दुनिया को भूल जायेगा। सचमुच, रूपान्तर की इस खोज के सामने कितना असंगत लगता है सब कुछ, कितना नीरस, निरर्थक और मूल्यहीन !

### शरीर में पवित्रता तथा आनन्द

ग्रहणशीलता की इस स्थिति में शरीर स्वयं को पूरी तरह समर्पित करते हुए दोहराता है : "केवल वही जो तुम चाहो प्रभु, जो तुम चाहो," निरन्तर यही है इसका प्रार्थना। 'उनकी' इच्छा ही सब कुछ करती है, कार्य करती है, रूपान्तर करती और पथ-संकेत देती है, शरीर तो बस अपने को सौंप देता है। यह कितना सहज-स्वाभाविक, अपने में पूर्ण और अद्भुत ढंग से समरूप होता है—एक निर्दोष सञ्चारी यन्त्र की तरह। 'उनकी' आज्ञा के बिना कुछ नहीं घटता ! शरीर एक अज्ञात हर्षोल्लास में थिरकता है। इसमें कुछ भी ऐसा नहीं रहा जो विरोध करे, विकृत करे, मिथ्या बनाये। सब कुछ विशुद्ध है, विशुद्ध और विमल, विशुद्धता जो निष्कलंक है, विमलता जो पारदर्शी-सी प्रतीत होती है। जब मैं अपनी भुजा की ओर, शरीर की ओर देखती हूँ तो वह पारभासी लगता है। इतना हलका होता है शरीर कि मैं जहां भी जाना चाहूँ, जा सकती हूँ। इस अवस्था में सारा दिन कठोर श्रम करने के बाद भी शरीर थकता नहीं; और यह क्रम रात को भी थमता नहीं जब मैं कोषाणुओं के रूपान्तर का काम जारी रखती हूँ। मैंने धरती पर अब तक जितने भी काम किये हैं उन सबकी अपेक्षा इस काम में कहीं अधिक धीरज, अचूक यथार्थता और एकाग्रता चाहिये। दोनों में कोई तुलना ही नहीं है। शरीर स्वयं पर एक नजर डालता है और हर्षोल्लास के कम्पन महसूस करता है : जो कुछ घटित हो रहा है उससे कितना खुश है यह ! इसे उसका आभास है जो सर्व-समर्थ है, शाश्वत और अनन्त है। हास और मृत्यु का इसके लिए कोई अर्थ नहीं रह गया, क्योंकि

आनन्द के इस लोक में उनका अस्तित्व ही नहीं है। शरीर एक तरह की अमरता के प्रति सजग है; यह अनुभव करता है कि सभी विद्यमान वस्तुएं उसके संकल्प द्वारा चालित होती हैं, भागवत चेतना के लिए सब कुछ अनन्त और शाश्वत है, पूर्ण प्रशान्ति है।

अकल्पनीय श्री-सुषमा! लेकिन अन्यथा हो ही कैसे सकता था? हमेशा यह शरीर, अर्थात् यह जड़द्रव्य जो ज्योतिर्मय लगता है, केवल यही दोहराता है : “जो तुम चाहो प्रभु, जो तुम चाहो।” या कभी-कभी प्रत्युत्तर में, यह अपने-आपको कृतज्ञता-भाव से पूर्णतया सौंप देता है, बस आश्चर्यचकित रह जाता है और दोहराता है : “मुझे अपने कार्य के योग्य बना लो, मुझे अपने योग्य बना लो।” यह सब और इससे भी अधिक और बहुत कुछ जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकती।

मैंने अवयवों को बदलने का काम भी शुरू कर दिया है, एक-एक करके सारे आन्तरिक अवयवों को। यह काम मैंने इसलिए शुरू किया है ताकि जीने के लिए बाहरी आवश्यकताएं और साधन अपरिहार्य न रह जायें—जीने की जरूरतों की और सारे प्रपंच की अब और जरूरत न रह जायेगी—वे सीधा ‘वैश्व शक्ति’ से ऊर्जा प्राप्त करेंगे...।

और अब मैं जानती हूँ कि इस दुष्कर कार्य को मैं कैसे कर सकी हूँ। ‘वह’ जिसने सब परिस्थितियों को संजोया और संवारा, तैयार किया, ‘वह’ जिसने निरन्तर मेरा मार्गदर्शन किया, ‘वह’ जो दर्द और पीड़ा के पलों में मेरे बराबर खड़ा था ताकि उस दुःखभरी कराहट से, खतरों और घोर यन्त्रणाओं से मुझे बाहर खींच ले—दर्द भी कैसा? मानों पूरा शरीर चीरा जा रहा हो—‘वह’ और कोई नहीं स्वयं श्रीअरविन्द थे जो मेरा मार्गदर्शन करने के लिए वहां मौजूद थे।

कई वर्ष पहले से, जब से उन्होंने अपना शरीर छोड़ा है, वे सूक्ष्म जगत् में ‘अतिमानसिक’ जगत् के अवतरण की तैयारी का काम कर रहे हैं। उन्होंने सारा प्रबन्ध कर दिया है ताकि धरती पर रूपान्तर का काम सम्पन्न हो सके। और अब मैं समझ रही हूँ कि ‘उनकी’ सहायता के बिना रूपान्तर का यह काम किस बुरी तरह से लटका रह जाता। ‘उनके’ बिना भला मैं क्या कर सकती थी? मुझे पता नहीं... पर ज्यादा कुछ तो नहीं। ‘परम’ पुस्तक से पृ. ४१-४२

—मोना सरकार

# श्रीमां का नया शरीर

## शारीरिक मुक्ति

इस शरीर ने कभी, कभी ऐसा अनुभव नहीं किया। कभी नहीं। इसके साथ ही उसने शरीर को ऐसी अवस्था में डाल दिया जो कुछ घण्टों के लिए बहुत... बहुत ही नाजुक थी। और उसके बाद ऐसा हुआ मानों हर चीज—प्रत्येक चीज—एक 'स्मित' और चमकती 'रोशनी' के साथ आयी, ऐसा लगा (अगर बच्चों की भाषा में कहें तो) मानों 'प्रभु' कह रहे हों : "देखो, मैं हर जगह हूँ, देखो, मैं हर चीज में हूँ।" वह अविश्वसनीय था—अविश्वसनीय...। किन्तु दोनों के बीच कोई सम्पर्क न था।

हां, तो उसी समय शरीर कह रहा था : "यह कैसी बात है? क्या इसी प्रकार च-ल-ते र-ह-ना पड़ेगा? हमें इसी तरह च-ल-ना पड़ेगा? संसार, मनुष्य, समस्त सृष्टि को इसी तरह चलते रहना पड़ेगा?"... वह ऐसा लगता था... मैं एकदम समझ गयी : हां, लोगों ने इसी को अपनी भाषा में "सनातन नरक" कहा है। यह वही है। कोई ऐसा व्यक्ति रहा होगा जिसे यह प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ होगा।

और वे सभी उपाय—जिन्हें कृत्रिम कहा जा सकता है, जिनमें निर्वाण भी आ जाता है—पलायन कर जाने के सभी उपाय व्यर्थ हैं। उस मूर्ख से लेकर जो जीवन को "समाप्त" करने के लिए आत्महत्या करता है (निस्सन्देह, यह सभी मूर्खताओं में सबसे बड़ी मूर्खता है, क्योंकि यह मामले को बहुत अधिक बिगाड़ देती है), वहां से लेकर निर्वाण तक (जिसके बारे में कल्पना यह है कि हम जीवन से पलायन कर सकते हैं), ये सब-के-सब उपाय **व्यर्थ** हैं। वे सब अलग-अलग स्तर के हैं, पर हैं सारे-के-सारे बिलकुल **व्यर्थ**। और फिर उसके बाद, उस समय जब तुम्हें सचमुच एक अनन्त नरक की अनुभूति होती है, अचानक... (केवल चेतना की एक स्थिति, उसके सिवा कुछ नहीं), अचानक एक ऐसी चेतना की स्थिति... जिसमें सब कुछ प्रकाश, भव्यता, सौन्दर्य, प्रसन्नता, मंगल है... और हर चीज अनिर्वचनीय। तो यह ऐसा है : "ओह, तो यह तुम हो," और फिर फट! वह प्रकट होता है और झट गायब! और तब वह 'चेतना' जो देखती है, जो अपने-आप पर दबाव डालती है और कहती है : "अब

अगला कदम, अगला कदम।” तो, ऐसा है, इन सब बातों के रहते हुए शरीर ने... सारे जीवन में कभी, कभी इतना दर्द नहीं सहा, और अब भी...

क्या यह, क्या यह उत्तोलक है?... पता नहीं। परन्तु मुक्ति शारीरिक है—वह मानसिक बिलकुल नहीं है, बल्कि शारीरिक है। मेरा मतलब यह है कि यह पलायन नहीं है, यह **यहां** है। इसकी प्रतीति बहुत जोर से हुई।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. १८९-९०

### शरीर को सिखाया जा रहा है केवल भगवान् द्वारा जीवित रहना

जहां तक शरीर का सवाल है, उसे सिखाया जा रहा है केवल भगवान् के द्वारा जीवित रहना, भगवान् पर निर्भर रह कर जीना, हर चीज के लिए, हर चीज, हर चीज, बिना अपवाद के हर एक चीज के लिए। जब चेतना यथासम्भव अधिक-से-अधिक ‘दिव्य चेतना’ के साथ जुड़ी हो केवल तभी अस्तित्व का भाव आता है। अब उसमें एक असाधारण तीव्रता है। जब भौतिक परिवर्तित हो जायेगा तो वह एक **ठोस** चीज होगी, समझे, जो हिलती-डुलती नहीं—और पूर्ण है। और इतनी ठोस...। भगवान् में रहना, केवल ‘उन्हीं’ के द्वारा और ‘उन्हीं’ में जीना, और फिर चेतना में रहना (स्वाभाविक है कि सामान्य नहीं, मानवीय चेतना में रहना)—इन दोनों में इतना फर्क है कि एक दूसरी के आगे मृत्यु लगती है, यहां तक कि...कहने का मतलब, भौतिक सिद्धि ही सचमुच ठोस सिद्धि है।

ऊर्जा का संकेन्द्रण शुरू हो गया है—ओह! यह अभी तक वह नहीं है, अभी उससे बहुत दूर है, लेकिन... जो होने वाला है उसके बोध का आरम्भ है। वह, हां... वह सचमुच अद्भुत है! वह शक्ति से इतना भरा है! चेतना में शक्ति और वास्तविकता से इतना भरा हुआ कि और कोई, कोई चीज इतना धारण नहीं कर सकती—इसके आगे प्राण, मन, सब कुछ अस्पष्ट और अनिश्चित प्रतीत होते हैं। वह ठोस है (*माताजी अपने हाथ कस कर पकड़ती हैं*)। और इतना मजबूत!

अब भी समस्याएं हैं जिन्हें सुलझाना है, लेकिन शब्दों और विचारों से नहीं। चीजें ठीक यही दिखाने के लिए आ रही हैं—केवल व्यक्तिगत चीजें नहीं, चारों ओर की चीजें: लोग, परिस्थितियां—सब कुछ, शरीर को

सच्ची चेतना प्राप्त करना सिखाने के लिए आ रहा है। यह, यह... अद्भुत है। (माताजी आत्म-निमग्न हो जाती हैं) ऐसा मालूम होता है कि ऐसा भौतिक शरीर बनाने की समस्या है जो उस 'शक्ति' को धारण कर सके जो अपने-आपको अभिव्यक्त करना चाहती है। सभी साधारण शारीरिक चेतनाएं उस विशाल 'शक्ति' को धारण करने के लिए बहुत नाजुक और कमजोर हैं जिसे अपने-आपको प्रकट करना है। इसलिए शरीर अपने-आपको प्रशिक्षित करने की तैयारी में है। और वह... जानते हो, मानों उसने अचानक एक अद्भुत, एक अद्भुत क्षितिज देखा है, विस्मयकारी रूप से अद्भुत; और फिर, उसे अपनी धारण-शक्ति के अनुसार आगे बढ़ने के लिए छोड़ दिया गया है। अनुकूलन की प्रक्रिया की जरूरत है। संक्रमण... पूर्ण संक्रमण।

क्या शरीर पर्याप्त रूप से नमनीय होगा? मुझे पता नहीं। यह नमनीयता का प्रश्न है। जो 'शक्ति' अपने-आपको अभिव्यक्त करना चाहती है (माताजी ऊपर से आये प्रवाह का अपने भीतर से गुजरने का संकेत करती हैं), उसे बिना बाधा दिये धारण करना और सञ्चारित करना।

## परतों का पिघलना

बाहरी आकार केवल भावी परिणाम हैं। अतः... बदलने के लिए आकार आखिरी चीजें होंगे।...

हां, मैं भी नहीं!... मैं ऐसी हूं (माथे की ओर इशारा) : कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ भी नहीं, खाली, खाली, खाली...। वह (ऊपर की ओर और विस्तार में इशारा), वह रहा... हां, यह एक सुनहरी बृहत्ता है।...

(मौन)

मुझे एक अजीब-सी प्रतीति होती है कि यह एक प्रकार का... मानों परतें या पेड़ों की छाल, कछुए के खपड़े पिघल रहे हैं और स्वयं शरीर ऐसा नहीं है (माताजी खुलने का ऐसा संकेत करती हैं मानों शरीर सूर्य की ओर उफन रहा हो)। जो चीज मनुष्य को 'द्रव्य' मालूम होती है वह... मानों वह कोई पथरायी हुई चीज है और उसे झड़ जाना चाहिये, क्योंकि वह ग्रहण नहीं करती। और इस शरीर में, यहां (माताजी अपने हाथ की त्वचा को छूती हैं), यह कोशिश करता है... कोशिश करता है... (फिर

से खुलने की मुद्रा)। ओह! यह अजीब है, यह अजीब संवेदन है। अगर इसे काफी समय तक बनाये रखा जा सके जिससे चीज पिघल जाये, तो यह सच्चा आरम्भ होगा।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. २८७-८९

## जो तू चाहे, जो तू चाहे

मैं कह सकती हूँ : शरीर के कोषाणुओं को केवल भगवान् का ही सहारा ढूँढ़ना सीखना चाहिये, उस क्षण तक जब तक वे यह अनुभव न करने लगें कि वे भगवान् की ही अभिव्यक्ति हैं।

वास्तव में, आजकल यही अनुभूति हो रही है। वस्तुओं के प्रभाव को बदलने की अनुभूति, वह मुझे हो रही है; लेकिन उसे मानसिक रूप नहीं दिया गया है, अतः मैं उसे शब्दों में नहीं कह सकती। लेकिन सचमुच कोषाणुओं ने अनुभव करना शुरू कर दिया है, सबसे पहले यह कि वे पूरी तरह भगवान् से शासित हैं (इसका अनुवाद होता है : “जो तू चाहे, जो तू चाहे”), यह स्थिति, और फिर एक प्रकार की ग्रहणशीलता जो (कैसे कहा जाये?) निष्क्रिय है—निश्चल नहीं, यह... सम्भवतः, हम कह सकते हैं, एक **निष्क्रिय** ग्रहणशीलता है (माताजी मुस्कान के साथ अपने हाथ खोलती हैं), लेकिन पता नहीं कैसे समझाया जाये।

सभी शब्द मिथ्या हैं, लेकिन हम कह सकते हैं : “केवल ‘तू’ ही है” —हां, कोषाणुओं को लगता है : “केवल ‘तू’ ही है”। हां, ऐसा ही है। लेकिन यह सब ऐसा है मानों चीज कठोर बन गयी हो—शब्द अनुभूति को कठोर बना देते हैं। एक प्रकार की नमनीयता या लचीलापन है (विश्वासपूर्ण, बहुत विश्वासपूर्ण लचीलापन) : “जो ‘तेरी’ इच्छा, जो ‘तेरी’ इच्छा।”

(मौन)

यह अमुक प्रकार की वृत्ति में (लेकिन इसे समझाना या इसकी व्याख्या करना कठिन है), अमुक प्रकार की वृत्ति में सब कुछ भगवान् बन जाता है। और तब विस्मयकारी बात तो यह है कि जब तुम्हें हर चीज के दिव्य होने की अनुभूति हो तो सभी विपरीत चीजें (यह चीजों पर निर्भर करता है) तेजी से या धीरे-धीरे, तुरन्त या थोड़ा-थोड़ा करके, बिलकुल स्वाभाविक रूप में विलीन हो जाती हैं। यह वास्तव में अद्भुत है। यानी, इस बात से



सचेतन होना कि सब कुछ भगवान् है सब कुछ को भगवान् बना देने का सबसे अच्छा तरीका है—यह समस्त विरोधों को समाप्त कर देता है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. २९२-९३

### पूरा शरीर भागवत प्रभाव तले है

... अधकचरा नहीं, समझौता नहीं, लगभग नहीं, नहीं... यह नहीं : वह तो यह है (माताजी मुट्टी नीचे लाती हैं)।

और यह इस शरीर के लिए, हर क्षण एक अनिवार्यता है : यह जीवन है या मृत्यु है। यह मोटा-मोटा उपगमन नहीं है जो अनादि काल से चला आ रहा है। शताब्दियों तक यह न बिलकुल बुरा था, न बिलकुल अच्छा—अब ऐसा नहीं है।

शरीर जानता है कि अतिमानसिक शरीर की रचना का यही तरीका है : उसे पूरी तरह भगवान् के प्रभाव में होना चाहिये—कोई समझौता नहीं, “लगभग” नहीं, “हो जायेगा” आदि नहीं : यह ऐसा है (माताजी अपनी मुट्टी नीचे रखती हैं), जबर्दस्त ‘संकल्प’।

लेकिन... तेजी से चलने के लिए यही एकमात्र रास्ता है।...

मानों सारे समय तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम जीवन और मृत्यु के बीच मंडरा रहे हो, और जिस क्षण तुम उचित वृत्ति अपनाते हो—जब सम्बद्ध भाग उचित वृत्ति अपनाता है—सब कुछ ठीक हो जाता है। सब कुछ स्वाभाविक रूप से और सरलता के साथ ठीक हो जाता है। यह अद्भुत है। लेकिन है यह एक भयंकर चीज, क्योंकि वहां सतत संकट रहता है। हां, शायद मैं नहीं जानती, दिन में शायद सौ बार यह भाव होता है : जीवन (मेरा मतलब है कोषाणुओं के लिए) या विघटन। और अगर वे अपनी आदत के अनुसार सिकुड़ते नहीं, तो सब कुछ ठीक चलता है। लेकिन वे भी सीख रहे हैं... (माताजी आत्म-निवेदन की मुद्रा में हाथ फैलाती हैं), तब सब कुछ ठीक रहता है। ऐसा लगता है मानों शरीर को एक प्रकार की अनिवार्यता के द्वारा नित्यता सिखायी जा रही है। यह सचमुच मजेदार है। और तब (सामान्य दृष्टि-बिन्दु से) मैं बाह्य परिस्थितियों को भयंकर होते हुए देखती हूं।...

यह तो हम ही उसके निष्पन्न होने में बाधा देते हैं... मानों हमारा

नियन्त्रण ही उस 'शक्ति' को काम करने से रोकता है, कुछ ऐसी ही चीज है। होना चाहिये... (माताजी हाथ फैलाती हैं)।

(मौन)

मुझे लगता है, मुझे लगता है कि अवचेतना को विश्वास हो गया है कि यदि वह अपना नियन्त्रण न रखे तो सब कुछ बिगड़ जायेगा। मुझे ऐसा लगता है। यही, यही वह चीज है जो कहती है : “आह, जागते रहो, सावधान।”... (माताजी हाथ फैलाती हैं)।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. ३१७-२०

## नया शरीर

आज सवेरे पहली बार मैंने अपने-आपको, अपने शरीर को देखा— मुझे पता नहीं कि वह अतिमानसिक शरीर था या... (कैसे कहूं?) संक्रमणकालीन शरीर। लेकिन मेरा शरीर एकदम नया था, इस अर्थ में कि वह अलैंगिक था, यानी, न स्त्री था, न पुरुष। वह बहुत गोरा था। लेकिन शायद यह इसलिए कि मेरी त्वचा गोरी है, पता नहीं। वह बहुत तन्वंग था (छरहरेपन का संकेत)—वह सुन्दर था। सचमुच सामञ्जस्यपूर्ण रूप। तो यह पहली बार था। मैं बिलकुल न जानती थी। मुझे कोई अन्दाजा न था कि वह कैसा होगा, बिलकुल नहीं। और मैंने देखा—मैं ऐसी थी, मैं ऐसी हो गयी थी।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. ३२१

उस दिन आपने अपने शरीर के अन्तर्दर्शन की बात कही थी, यह संक्रमणकालीन शरीर...

हां, वह ऐसा ही था। वह मैं स्वयं थी। मैंने अपने-आपको दर्पण में नहीं देखा था : मैंने अपने-आपको यूं देखा था (माताजी अपने शरीर पर नजर डालने के लिए सिर झुकाती हैं), मैं... मैं ऐसी थी।

यह पहली बार था। मेरा ख्याल है कि यह सवेरे चार बजे की बात है। यह बिलकुल स्वाभाविक था—मैंने दर्पण में नहीं देखा, मैं बिलकुल स्वाभाविक थी। मुझे केवल वही याद है जो मैंने देखा था (सीने से कमर

तक का इशारा)। मेरे ऊपर सिर्फ एक परदा-सा था। इसलिए मैंने केवल... धड़ देखा, सीने से कमर तक, बिलकुल भिन्न था : न स्त्री, न पुरुष।

और वह सुन्दर था। उसका आकार बहुत, बहुत, छरहरा और बहुत कोमल था—बहुत छरहरा, परन्तु दुबला नहीं। और त्वचा बहुत सफेद थी; त्वचा मेरी त्वचा जैसी ही थी। सारा आकार बड़ा सुन्दर था, पर था अलैंगिक—यह न कहा जा सकता था कि स्त्री है या पुरुष। सेक्स गायब हो गया था। और यहां भी (माताजी छाती की ओर इशारा करती हैं), यह सब न था। पता नहीं कैसे कहा जाये। वह केवल एक सादृश्य था, लेकिन कोई आकार न था (माताजी अपने सीने को छूती हैं), इतना भी नहीं जितना पुरुषों में होता है। बहुत गोरी त्वचा, सब कुछ एकदम समतल, मानों कोई पेट न था। आमाशय—आमाशय न था। सब कुछ बहुत तनु था। हां, तो मैंने उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, क्योंकि मैं स्वयं वैसी थी और मुझे वह बहुत स्वाभाविक लगा।...

मैंने यह देखने के लिए उस पर निगाह नहीं डाली कि वह कैसा है, क्योंकि वह बिलकुल स्वाभाविक था, इसलिए मैं विस्तृत वर्णन नहीं दे सकती। बस, वह न तो पुरुष का शरीर था, न स्त्री का—यह स्पष्ट है। और उसकी “रूप-रेखा”, उसका आकार लगभग वैसा था जैसा किसी अत्यधिक युवा व्यक्ति का हो। मानव आकार के साथ कुछ-कुछ सादृश्य था (माताजी हवा में रेखाएं बनाती हैं), उसमें कन्धा था, एक आकृति थी। मानों मानव शरीर का सादृश्य हो।

मैं उसे देखती हूं, लेकिन... मैंने उसे ऐसे देखा जैसे कोई अपने-आपको देखता है। मैंने एक प्रकार का परदा-सा डाल रखा था, यूं, अपने-आपको ढकने के लिए। वह सत्ता का एक प्रकार था (मेरे लिए आश्चर्यजनक न था), वह सत्ता का एक स्वाभाविक रूप था।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. ३२२-२३

क्या आप कृपया मुझे अपने नये शरीर में दर्शन देंगी? मेरा ख्याल है कि यह आपकी सहायता से सम्भव होगा।

सहायता तो हमेशा रहती है लेकिन उसे ज्यादा तीव्र कर दिया जायेगा,

क्योंकि तुम्हें काफी लम्बे समय तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार रहना चाहिये।

*मैं बहुत चाहूंगा कि आपको आपके नये शरीर में देख सकूँ। तब तक वर दीजिये कि आप जो कुछ दें उसे मैं ग्रहण करके आत्मसात् कर सकूँ।*

मेरा ख्याल है तुम्हारा मतलब मेरे **नये रूप** या **रूपान्तरित** शरीर से है।

क्योंकि **नये** शरीर के लिए, मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानती जो ऐसा पूर्ण, जीवित शरीर तैयार कर सके जिसमें मैं अपनी वर्तमान चेतना को खोये बिना कम-से-कम कुछ अंश में प्रवेश कर सकूँ। हां, निश्चय ही यह अपेक्षाकृत ज्यादा आसान प्रक्रिया होती, लेकिन इस शरीर के कोषाणुओं के प्रति यह न्यायोचित न होगा जो उत्साह से कितने भरे हैं, और सहर्ष रूपान्तर की दुष्कर प्रक्रिया के लिए अपने-आपको प्रस्तुत कर रहे हैं।

बहरहाल, जैसा कि मैं पहले ही कह चुकी हूँ, तुम्हें उसके लिए लम्बे अरसे तक प्रतीक्षा करने और बहुत-से जन्मदिन बीतते हुए देखने के लिए तैयार रहना चाहिये। निश्चय ही, यह बहुत अच्छा है और मैं इससे पूरी तरह सहमत हूँ।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १३, पृ. ५९-६०

*प्रश्न : लेकिन मां, हम चाहते हैं, हम वह कान्तिमय तथा प्रदीप्त शरीर देखना चाहते हैं, वह रूपान्तरित शरीर।*

वैसा वातावरण, वैसी परिस्थिति होनी चाहिये। कुछ ऐसे व्यक्ति होने चाहियें जो इस अभिव्यक्ति के लिए अभीप्सा करें। सद्भावना से भरे लोग, ऐसा परिवेश होना चाहिये जहां मनुष्य विकसित हो सकें, वे मनुष्य जो रूपान्तर की अभीप्सा रखते हैं, जो सामञ्जस्य, शान्ति इत्यादि के लिए सहज रूप से सहयोग देने के लिए तैयार हैं। एक अनुकूल वातावरण होना चाहिये ताकि मैं अवतरित हो सकूँ। इसी चीज की कमी है। क्या एक भी ऐसा व्यक्ति है जो कह सके कि उसके अन्दर अहंकार नहीं है, कि वह पूरी तरह

से भगवान् के लिए है? बिना किसी शर्त के, पूरी तरह से समर्पित? क्या एक भी ऐसा है?... अभी तक नहीं। मैं प्रतीक्षा में हूँ।

हम देखेंगे कि यह कब होता है। प्रतीक्षा करें। हम देखेंगे, परम प्रभु 'स्वयं' को कब यहां नीचे (*स्वयं को इंगित करते हुए*) अभिव्यक्त करेंगे, उस दिवस का हम इन्तजार करेंगे।

Blessings of the Grace, पृ. २६-२७

### एक शिशु जो भगवान् की भुजाओं में है

दो-तीन दिन हुए, मुझे ठीक याद नहीं, एक बहुत बड़ी कठिनाई आयी। और तुरन्त मुझे ऐसा लगा कि मैं लिपटी हुई हूँ (*मुद्रा*), मानों मैं एक शिशु के जैसी हूँ जो भगवान् की भुजाओं में है। तुम समझ रहे हो, यह ऐसा ही था। यह ऐसा ही था मानों एक शिशु भगवान् की भुजाओं में हो। और फिर... एक क्षण के बाद (लेकिन यह लम्बा क्षण था), जब यह इस तरह एकमात्र भगवान् की उपस्थिति में था तो सारी पीड़ा गायब हो गयी। इसने पीड़ा के जाने की मांग तक नहीं की, लेकिन वह चली गयी। उसने कुछ समय तो लिया, पर चली गयी।...

मुझे पूरी तरह, पूरी तरह से यही लग रहा था कि मैं एक शिशु की भांति भगवान् की भुजाओं में लिपटी हूँ (*मुद्रा*)। असाधारण। (*मौन*)

हां, तो कुछ समय के लिए ऐसा है: “जो ‘तेरी’ इच्छा, जो ‘तेरी’ इच्छा” और फिर यह भी चुप हो जाता है... (*माताजी समर्पण-भाव से ऊपर की ओर भुजाएं उठाती हैं*)।

*एकाग्रता का प्रकार बदलना चाहिये।*

हां।...

... वास्तव में, यह बच्चे की असमर्थता की भावना है, समझे? लेकिन यह कोई “सोची हुई” या “इच्छित” वस्तु नहीं है, यह बिलकुल सहज होती है। और फिर वहां से तुम एक ऐसी स्थिति में चले जाते हो... (*आनन्दमयी मुस्कान लिये माताजी हाथ फैलाती हैं*)।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. ३१४-१५



श्रीमां

# मृत्यु पर विजय

(एक शिष्य का संस्मरण)

**सब अच्छा है, सब और अधिक अच्छा होगा**

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पार्थिव रूपान्तर के लिए, अर्थात्, मानव जीवन के कोषाणुओं तक में परम दिव्यीकरण हेतु उस चरम आविष्कार, यानी, श्रीअरविन्द तथा स्वयं उनके द्वारा सत्य-चेतना से भरे सर्व-प्रदीप्त अतिमानस के अवतरण के लिए ही श्रीमां ने अपने भौतिक आवरण को छोड़ने का चुनाव किया। श्रीअरविन्द के प्रयाण के समय श्रीमां ने जो शब्द कहे थे वे ही उनके लिए भी कहे जा सकते हैं क्योंकि पृथ्वी का वर्तमान जीवन आज भी उन्हीं समान चुनौतीभरी परिस्थितियों से गुजर रहा है। तब उन्होंने कहा था कि जब श्रीअरविन्द सशरीर थे उससे अधिक शक्ति अब उनके अधिकार में है और केवल उनकी तथाकथित मृत्यु के द्वारा ही वे धरती पर अधिक शक्तिशाली रूप से क्रिया कर रहे हैं, और आज की अवस्था के लिए उस तरह का कार्य अनिवार्य बन गया है। हम यह भी जोड़ सकते हैं कि प्रयाण के बाद वे स्वयं भी श्रीअरविन्द के कार्य को “ठोस” और प्रायः “भौतिक रूप से” आगे बढ़ा रही हैं।...

कौन जानता है कि श्रीमां की भौतिक अनुपस्थिति बहुत समय तक न बनी रहे! हम इस तथ्य से अवगत हैं कि उनका अतिमानसिक शरीर पहले से ही उनके अन्दर विद्यमान था जो उनके मानव शरीर के साथ एक होने की प्रतीक्षा में था। यही है उनका योग कि कैसे मानव को इतनी पूरी तरह बदला जा सके कि वह अतिमानव बन जाये। इसके लिए वे बहुत कष्टों से भी गुजरीं और सम्भवतः जब उन्होंने प्रयाण किया तो उनके पार्थिव शरीर ने अतिमानस की उपलब्धि को पूरी तरह आत्मसात् कर लिया था और वह इतना घना हो गया था कि सूक्ष्म-भौतिक में उतर सके, अतः हम आशा करते हैं कि उनका नया शरीर निकट भविष्य में अवश्य प्रकट होगा।

हमें बस इतना ही नहीं कहना है : “सब अच्छा होगा।” हमें तो कहना है : “सब अच्छा है—सब और अधिक अच्छा होगा!”

—अमल किरण

## श्रीमां का एक अन्तर्दर्शन

मैं सो गयी थी और अब मैं जाग उठी हूं।

मैं पश्चिमी जलों पर सोयी हुई थी, और अब मैं समुद्र में उसकी गहराइयों की थाह लेने के लिए प्रवेश कर रही हूं। सतह वैदूर्य की तरह हरी है जिस पर चांदनी ने रजत रंग लगा दिया है। नीचे, पानी नीलमणि की तरह नीला है, वह शीघ्र ही हलका प्रकाशमान हो उठता है।

मैं लहरियेदार रेशम की तरह चमकती लहरों पर लेट जाती हूं और अब नीचे उतरती हूं। एक कोमल नियमित झकोर मुझे एक लहर से दूसरी लहर की ओर झुलाती हुई ले जाती है और मैं सीधी पश्चिम की ओर ले जायी जाती हूं। जैसे-जैसे मैं नीचे की ओर फिसलती हूं, जल ज्यादा-ज्यादा चमकदार होता जाता है और उस पर चौड़ी रजत तरंगों की धारियां पड़ी हैं।

इस भांति लम्बे समय तक मैं उतरती चली जाती हूं। एक लहर से दूसरी लहर तक झूलती नीचे, और नीचे जाती हूं।

अचानक, ऊपर देखने पर मुझे एक गुलाबी झलक दिखायी देती है। मैं ज्यादा नजदीक जाती हूं और एक नीली चट्टान से चिपकी हुई मूंगे की-सी एक झाड़ी देखती हूं जो एक वृक्ष के जितनी बड़ी है। असंख्य प्रकार के जलचर वहां आते-जाते हैं। अब मैं बारीक चमकदार बालू पर खड़ी हूं। मैं विस्मित-सी अपने चारों ओर देखती हूं। पहाड़ हैं, घाटिया हैं, कल्पनापूर्ण वन, विचित्र पुष्प हैं जो लगभग पशु हो सकते हैं, हम मछलियों को फूल समझ सकते हैं—चर और अचर सत्ताओं में कोई विभेद नहीं है, कोई अन्तर नहीं है। सब जगह कोमल या स्पष्ट और अनेक छटाओंवाले रंग हैं—हमेशा सुरुचिपूर्ण और एक दूसरे के साथ सामञ्जस्य रखने वाले। मैं सुनहरे बालू पर चलती हूं और इस सुन्दरता को निहारती हूं जो हलके नीले कान्तिमय रंग में नहायी हुई है जिस पर लाल, हरे या सुनहरे छोटे-छोटे घूमते हुए मण्डल छितरे हुए हैं।

सागर की गहराइयां कितनी अद्भुत हैं! हर जगह हम उस एकमेव की उपस्थिति का अनुभव करते हैं जिसमें सभी सामञ्जस्य निवास करते हैं!

मैं पश्चिम की ओर चलती जाती हूं, कोई थकान नहीं, गति में कोई



कमी नहीं। अविश्वसनीय विविधता के साथ दृश्य पर दृश्य आते जा रहे हैं। वहां वैदूर्य की पहाड़ी पर महीन और नाजुक, सुनहरे या जामुनी बालों जैसा समुद्री शैवाल है, इधर गुलाबी दीवारें हैं जिन पर रजत तारे लगे हैं, फूल हैं। ऐसा लगता है कि इन फूलों को बड़े-बड़े हीरों से तराश कर बनाया गया है और इधर ऐसे सुन्दर चषक हैं, ऐसा लगता है कि इन्हें अधिक-से-अधिक कुशल कारीगरों ने बनाया होगा। उनके अन्दर, मानों मरकत की बूंदें हैं जो बारी-बारी से प्रकाश और अन्धकार से धड़क रही हैं।

अब मैं नीलमणि-सी नीली चट्टानों की दो दीवारों के बीच रजत-मार्ग पर आ गयी हूं। जल अधिक स्वच्छ और प्रकाशमान हो रहा है।

अचानक, रास्ते के एक मोड़ पर मैं अपने-आपको एक गुफा के सामने पाती हूं जो तराशे हुए स्फटिक से बनी हुई मालूम होती है, वह इन्द्रधनुष के रंगों से झिलमिला रही है।

दो सतरंगी स्तम्भों के बीच एक लम्बी सत्ता खड़ी है। उसका चेहरा बिलकुल युवा पुरुष जैसा है जो छोटी-छोटी सुन्दर अलकों से सज्जित है। उसकी आंखें सागर की तरह हरी हैं। वह हलका नीला कुरता पहने हुए है, उसके कन्धों पर पंखों की जगह हिम-श्वेत मीन-पक्ष हैं। मुझे देखते ही वह पीछे हट कर एक स्तम्भ के सहारे खड़ा हो जाता है ताकि मैं निकल सकूं। मैंने अभी देहली पार की ही थी कि एक उत्कृष्ट लय मेरे कानों में गूंजी। यहां सारा जल सतरंगी है। जमीन पर मुक्ताभ मोती बिखरे हुए हैं, दरवाजा और मेहराब, जिनसे मनोहर हिमतोरण लटक रहे हैं, दूधिया जैसे लगते हैं और सुखद सुगन्धों से हवा भरी हुई है। दीर्घा, कोने और गुफाएं हर ओर खुलती हैं, लेकिन मैं अपने ठीक सामने एक बहुत बड़ी रोशनी देखती हूं और मैं अपने कदम उसी तरफ बढ़ाती हूं। यह रोशनी नीलम, मरकत और माणिक्य की चौड़ी, सुनहरी और रजत किरणों से बनी है। सबकी सब ऐसे बिन्दु से निकल रही हैं जो मुझसे इतनी दूर है कि मैं पहचान नहीं सकती कि वह क्या है। वे सभी दिशाओं में फैल रही हैं। मुझे लगता है कि मैं आकर्षण के एक प्रबल केन्द्र की ओर खिंच रही हूं।

अब मैं इन किरणों के स्रोत को देख सकती हूं। मैं श्वेत प्रकाश का एक अण्डाकार देखती हूं जिसके चारों ओर एक भव्य इन्द्रधनुषी प्रभामण्डल

है। अण्डाकार क्षैतिज रूप में रखा हुआ है और मुझे लगता है कि जिसे प्रकाश मेरी नजर से छिपा रहा है, वह गहरी नींद में है। मैं इन्द्रधनुष की बाहरी कोर पर बड़ी देर तक खड़ी रहती हूँ और जो ऐसे वैभव में सो रहा है उसे प्रकाश में से ताकती हूँ। इस तरह कुछ भी न पहचान पाने के कारण मैं पहले इन्द्रधनुष में प्रवेश करती हूँ और फिर चमकदार अण्डाकार में। अब मैं एक अद्भुत सत्ता को देखती हूँ जो ऐसा लगता है कि कोमल सफेद पिच्छों की राशि पर लेटा हुआ है। उसका सुनम्य, अनुपम सुन्दर शरीर लम्बे सफेद चोगे से ढका है। उसका सिर मुड़ी हुई बांह पर टिका है। मैं उसकी केवल पके धान के रंग की लम्बी अलकें देख सकती हूँ जो उसके कन्धों पर लहरा रही हैं। इस भव्य दृश्य को देख कर मेरे अन्दर सशक्त, मधुर और साथ ही गभीर आदर का भाव प्रवाहित होता है।

क्या सोनेवाले को मेरी उपस्थिति का भान हो गया है? अब वह जाग जाता है और अपनी समस्त सुन्दरता और मनोहरता के साथ उठ खड़ा होता है। वह मेरी ओर मुड़ता है और हमारी आंखें चार होती हैं। उसकी चमकदार नील-लोहित आंखें अपार मधुरता और कोमलता से परिपूर्ण हैं। वह मेरा निःशब्द, सप्रेम स्वागत करता है जिसका मेरी समस्त सत्ता बड़े आनन्द से उत्तर देती है। तब मेरा हाथ पकड़ कर वह मुझे उस शय्या की ओर ले जाता है जो उसने अभी-अभी छोड़ी है। मैं इस कोमल पिच्छशुभ्रता पर लेट जाती हूँ और सामञ्जस्यपूर्ण चेहरा मेरे ऊपर झुकता है। शक्ति का मधुर प्रवाह मुझे नया प्राण देता हुआ, हर कोषाणु को पुनरुज्जीवित करता हुआ, मेरे ऊपर फैल जाता है।

तब उन भव्य इन्द्रधनुषी रंगों से घिरी हुई, शामक रागों और उत्कृष्ट सुरभियों से वेष्टित, मैं उस सशक्त, कोमल दृष्टि के नीचे आनन्दमय विश्राम में सो जाती हूँ और निद्रा में मैंने बहुत-सी सुन्दर और उपयोगी चीजें सीखीं। मैं जिन निःशब्द, अद्भुत चीजों को समझ पायी, उनमें से मैं केवल एक सुनाऊंगी।

जहां कहीं सुन्दरता है, जहां कहीं कान्ति है, जहां कहीं पूर्णता की ओर प्रगति है, फिर चाहे वह ऊंचाइयों के 'स्वर्ग' में हो या गहराइयों के 'स्वर्ग' में, वहां निश्चय ही मनुष्य जैसी या मनुष्य की आकृति की सत्ताएं पायी जायेंगी—मनुष्य पार्थिव क्रम-विकास का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है।

‘पुरोधऱ’ :

## दैनन्दिनी

नवम्बर

१. सच्चा प्रेम अपनी तीव्रता में बहुत गम्भीर और अचञ्चल है; यह भी हो सकता है कि वह किन्हीं भी बाहरी संवेदनात्मक और स्नेहपूर्ण क्रियाओं में अभिव्यक्त न हो।
२. तुम मानव प्रेम के द्वारा भगवान् से प्रेम करना नहीं सीख सकते, क्योंकि वह प्रेम और ही प्रकार का है। पहले अपने-आपको सच्चे, निष्कपट भाव से भगवान् को देना सीखो उसके बाद प्रेम का आनन्द आयेगा। अपने-आपको सच्चाई के साथ देने से तुम्हारी सब कठिनाइयां गायब हो जायेंगी।
३. अपने-आपको बड़ा या छोटा, बहुत महत्त्वपूर्ण या एकदम नगण्य न समझो क्योंकि हम अपने-आपमें कुछ भी नहीं हैं। हमें भगवान् जो बनाना चाहते हैं, हमें वही बनने के लिए जीना चाहिये।
४. सचमुच सच्ची नम्रता हमारी रक्षक है—यह अहंकार के अनिवार्य विलयन के लिए सबसे निश्चित मार्ग है।
५. भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे अच्छा उपाय है सरल भाव से प्रसन्न रहना।
६. यह है निष्ठा—केवल भगवान् द्वारा प्रेरित और निर्दिष्ट गतिविधियों के सिवा किसी और क्रिया को स्वीकार या अभिव्यक्त न करना।
७. भगवान् के प्रति अपने अर्पण में निष्ठा के बिना हृदय में शान्ति नहीं हो सकती।
८. अध्यवसायी संकल्प सभी कठिनाइयों पर विजय पाता है।
९. हम सबसे अधिक सुन्दर विचारों के द्वारा भी प्रगति नहीं कर सकते अगर हमारे अन्दर यह निरन्तर संकल्प न हो कि वे विचार अधिक अच्छे अनुभवों, अधिक यथार्थ संवेदनाओं और अधिक अच्छी क्रियाओं के द्वारा हमारे अन्दर अभिव्यक्त हों।
१०. तुम्हें अपनी अभीप्सा को स्थायी रखना और अपने प्रयास में धीरज धरना चाहिये, तब सफलता निश्चित है।

११. प्रतीक्षा करना जानने का अर्थ है 'समय' को अपने साथ रखना।
१२. वस्तुतः सुखी है वह आदमी जो भगवान् से प्रेम करता है क्योंकि भगवान् हमेशा उसके साथ रहते हैं।
१३. जब भगवान् सच्चा आन्तरिक सुख प्रदान करते हैं तो दुनिया की किसी चीज में वह शक्ति नहीं होती जो उसे छीन सके।
१४. एक गहरी और सत्य चेतना है जिसमें सभी प्रेम तथा सामञ्जस्य के साथ मिल सकते हैं।
१५. स्वाधीनता है केवल वही करना जो 'परम चेतना' हमसे करवाये। अन्य सभी परिस्थितियों में आदमी दास होता है, चाहे औरों की इच्छा का हो या परिपाटियों का, नैतिक विधानों का हो या प्राणिक आवेगों, मानसिक सनकों या फिर इन सबसे बढ़ कर 'अहंकार' की कामनाओं का।
१६. अगर व्यक्ति भगवान् के समीप रहना चाहता है तो उसके जीवन पर पूर्ण सत्य का शासन होना चाहिये।
१७. कम बोलो, सच्चे बनो, पूर्ण निष्कपटता के साथ काम करो।
१८. यह मानना भ्रान्ति और अन्धविश्वास है कि कोई बाहरी चीज या परिस्थिति किसी भी चीज का कारण हो सकती है। सभी चीजें और परिस्थितियां उस परम शक्ति के संलग्न परिणाम होते हैं जो परदे के पीछे से कार्य करती है।  
'शक्ति' क्रिया करती है और प्रत्येक वस्तु अपनी प्रकृति के अनुसार प्रतिक्रिया करती है।
१९. सतत आन्तरिक विकास द्वारा मनुष्य सतत नवीनता और जीवन में अक्षय रस पा सकता है। और कोई सन्तोषजनक उपाय नहीं है।
२०. अपनी अभीप्सा को स्थिर बनाये रखना और अपने-आपको पूरी सच्ची निष्कपटता के साथ देखना सभी बाधाओं पर विजय पाने का निश्चित उपाय है।
२१. परिस्थितियां हमेशा छिपी हुई दुर्बलताओं को प्रकट करने के लिए आती हैं ताकि उन्हें जीता जा सके।
२२. अगर सचमुच तुम भगवान् से प्रेम करते हो तो इसे अचञ्चल और शान्त रह कर प्रमाणित करो। हर एक के जीवन में जो कुछ आता

है, भगवान् के यहां से पाठ सिखाने के लिए आता है और अगर हम उसे उचित भाव से लें तो हम तेजी से प्रगति करते हैं।  
ऐसा करने की कोशिश करो।

२३. प्रगति के बारे में चिन्ता न करना ज्यादा अच्छा है क्योंकि चिन्ता केवल प्रगति में बाधा देती है। पूरे विश्वास और सरलता के साथ भागवत सहायता की ओर खुलना और 'विजय' पर विश्वास रखना ज्यादा अच्छा है।
२४. सभी अग्नि-परीक्षाओं के लिए कृतज्ञ होओ, वे भगवान् तक जाने का छोटे-से-छोटा रास्ता हैं।
२५. हर एक के लिए और सारी पृथ्वी के लिए ऐसी हर चीज उपयोगी हो सकती है जो भगवान् को पाने में सहायता करे।
२६. ... अस्तव्यस्तता और अन्धकार से बाहर निकलने का बस एक ही उपाय है, वह है बहुत स्थिर और शान्त तथा समचित्तता में दृढ़ रहना और तूफान को चले जाने देना।
२७. अगर तुम अपनी श्रद्धा को अटल और अपने हृदय को हमेशा मेरे प्रति खुला रखो, तो चाहे जितनी बड़ी कठिनाइयां क्यों न आयें वे तुम्हारी सत्ता को अधिक पूर्ण बनाने में योगदान देंगी।  
सभी कठिनाइयां श्रद्धा की सहनशीलता की जांच करने के लिए हैं।
२८. धरती पर जीवन, जैसा कि आजकल है, दुःख-दारिद्र्य से भरा है और हर संवेदनशील हृदय उसके कारण दुःख से भरा है। इस कठिनाई और दुःख में से निकलने का एक ही सच्चा प्रभावशाली उपाय है — भागवत चेतना के साथ सम्पर्क में आना और उसकी दया, उसके बल और उसके प्रकाश में जीना।  
चैत्य के साथ एक होकर हम इस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं।
२९. चीजें भले वैसी न हों जैसी होनी चाहियें, चिन्ता उन्हें सुधारने में सहायता नहीं करती। निश्चल विश्वास बल का स्रोत है।
३०. सहायता की मांग करना और भरोसा न रखना बेतुका है। इसके विपरीत, विश्वास से हर चीज कितनी आसान हो जाती है।

## एक दिन...

सारी प्रकृति मूक भाषा में उसे ही पुकारती है ताकि वह अपने चरणों से उसके जीवन की दुखती हुई धड़कनों को मुक्त कर सके और मानव की धुंधली आत्मा पर लगी मुहरों को तोड़ सके और वस्तुओं के बन्द हृदय में अपनी ज्वाला धधका दे। एक दिन यहां जो कुछ है वह सब उसकी मधुरता का आवास होगा, सभी परस्पर विरोधी बातें उसके सामञ्जस्य को तैयार करेंगी। हमारा ज्ञान उसकी ओर आरोहण करता है। हमारे आवेश उसी ओर टटोलते हैं। हम उसके चमत्कारी आनन्द में निवास करेंगे। उसका आलिंगन हमारे कष्टों को आनन्द में बदल देगा। हमारी आत्मा उसके द्वारा सबके साथ एक आत्मा होगी, उसके अन्दर रूपान्तरित होकर उसी में अनुमोदित होगी। हमारा जीवन उसके पूर्ण प्रत्युत्तर में ऊपर असीम नीरव आनन्द और नीचे दिव्य आलिंगन का चमत्कार पायेगा।

इस गोचर और दृश्य जगत् का गुप्त कारण है निश्चेतन भौतिक द्रव्य में अतिचेतन आत्मा का अन्तर्लयन। धरती की पहेली का संकेत-शब्द है, एक छिपी हुई असीम चेतना और शक्ति का—जड़ दीखने वाली परन्तु भयंकर रूप से चालित संज्ञाहीन प्रकृति में से—क्रमशः विकास। पार्थिव जीवन महान् देव का अपना चुना हुआ आवास है और उनकी चिरकालिक इच्छा है कि उसे अन्धे कारागार में से निकाल कर भव्य भवन और स्वर्ग तक पहुंचाने वाले उच्च मन्दिर में बदल दें।

—श्रीअरविन्द

### भूल सुधार

(सितम्बर-अंक के पृष्ठ ४६ पर 'प्रकाश का कवच' लेख में ३ दशक की जगह ३० दशक छप गया है। इसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं हम। —सम्पादक)

## वह रेलयात्रा और अविस्मरणीय वे दो नाम

(यह प्रसिद्ध लेख संक्रामक बन चुका है! देश के विभिन्न अखबार इसके गवाह हैं। हमारे पाठक भी इस अपूर्व लेख के हिन्दी रूपान्तरण का लाभ उठायें।

इसकी लेखिका लीना सरमा सम्प्रति दिल्ली में भारतीय रेलवे के सूचना-विभाग की जनरल मैनेजर हैं। —सं.)

१९९० का ग्रीष्म-काल था। भारतीय-रेलवे (यातायात) के परिवीक्षार्थी के प्रशिक्षण के सिलसिले में मैं अपनी सहेली के साथ लखनऊ से दिल्ली रेल में सफर कर रही थी। दो संसद-सदस्य भी उसी डिब्बे में चढ़े; यहां तक तो ठीक था, लेकिन उनके साथ बिना आरक्षण के जो १२ व्यक्ति चढ़े उनका व्यवहार त्रासक था। आते ही उन्होंने हमसे हमारी आरक्षित सीटें हड़प लीं, हमें अपने बिस्तरबन्द पर एक कोने में सिकुड़ कर बैठना पड़ा! बीच-बीच में उनकी छींटाकशी भी चल रही थी; डरी-सहमी हम दोनों बाहर से भीगी बिल्ली, लेकिन अन्दर गुस्से का ज्वालामुखी बनी बैठी थीं। अराजकता की इस टुकड़ी के साथ सफर करना सचमुच भयंकर था। अपमान और अभिमान की दुधारी तलवार मानों हमारे सिर पर लटक रही थी। हमारे डिब्बे के दूसरे यात्रियों ने मानों अदृश्यता का जामा ओढ़ लिया था, वहां होते हुए भी नहीं थे! 'टिकट-चेकर' भी उन्हीं की थैली का चट्टा-बट्टा बना बैठा था!!

हनुमान-चालीसा का जाप करते-करते किसी तरह सफर पूरा हुआ, हम सवेरे दिल्ली पहुंचे—हालांकि भौतिक रूप से हमें खरोंच तक नहीं आयी थी, लेकिन भावुक रूप से हम पूरी तरह ढह चुके थे। मेरी सहेली तो इतनी आतंकित हो उठी कि उसने अगले चरण की यात्रा—यानी, दिल्ली से अहमदाबाद जाने से एकदम साफ इन्कार कर दिया, उसे समझाने-बुझाने की मेरी हर कोशिश नाकामयाब रही क्योंकि वह किसी भी हालत में रात में सफर नहीं करना चाहती थी... हार कर मैंने अपनी यात्रा जारी रखने का निश्चय किया क्योंकि मेरी एक और साथिन दिल्ली से मेरे साथ थी (उत्पलपर्णा हजारिका, जो आज रेलवे-बोर्ड में प्रशासक-अध्यक्षा हैं)।

गुजरात की राजधानी अहमदाबाद के लिए हमने फिर रातवाली रेल पकड़ी। मेरा दिल धुकधुका रहा था... हमारी सीटें भी आरक्षित न हो पायी थीं, प्रतीक्षा-पंक्ति में थे हमारे नाम!!

हम प्रथम-श्रेणी के टिकट-चेकर से मिले, हमने अपनी समस्या उनके सामने रखी कि हमारा अहमदाबाद पहुंचना कितना जरूरी है। रेल खचाखच भरी थी, फिर भी उन्होंने हमारी भरसक सहायता कर हमें एक 'कूपे' में इस आश्वासन से बिठला दिया कि आगे सम्भव हुआ तो वे हमें सीटें भी दिलवा देंगे। तभी मेरी नजर खद्वरधारी दो राजनेताओं पर पड़ी। मेरा दिल बैठ गया। तभी टिकट-चेकर ने कहा, "आप दोनों यहीं बैठें, ये दोनों सज्जन इस गाड़ी से प्रायः सफर करते हैं।" पर मेरा बैठा हुआ दिल तो और भी धसकने लगा...। मैंने कनखियों से उन्हें परखने की कोशिश की, एक ४५-४६ के रहे होंगे तो दूसरे ३५-४० के बीच के। उनके चेहरों के भाव ने मुझे फौरन आश्चर्य कर दिया। वे खुद ऐसे सिकुड़ कर बैठ गये मानों वे हमारी सीटों पर अनधिकार कब्जा किये हों! हम दोनों ने उन्हें दिल से धन्यवाद दिया और हमारी बातों का सिलसिला शुरू हो गया। दोनों गुजरात से भारतीय जनता पार्टी के नेता थे। उन्होंने अपने नाम भी बतलाये, लेकिन रेल के सहयात्रियों के नाम कहां याद रहते हैं। हमने भी अपना परिचय दिया—हम रेलवे के परिवीक्षार्थी आसाम से आ रहे हैं। हमारी बातचीत विभिन्न विषयों पर होती रही, खासकर इतिहास और राजनीति पर। दिल्ली यूनिवर्सिटी में इतिहास में 'पोस्ट ग्रेजुएट' मेरी सहेली बातों के सागर में डूब गयी, मैं भी बीच-बीच में अपना दृष्टिकोण प्रकट करती। आखीर में बातचीत हिन्दू-महासभा और मुस्लिम लीग पर आ टिकी।

उम्र में बड़े राजनेता बड़े उत्साह से अपना मत प्रकट करने लगे, छोटे इतना बोल नहीं रहे थे, लेकिन उनकी प्रखर आंखों की विद्वत्ता की मौन भाषा मुखर थी। फिर मैंने श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मृत्यु का जिक्र छोड़ा कि वह अब तक कइयों के लिए एक रहस्य ही बनी हुई है। बड़े सज्जन ने तपाक से पूछा, "तुम श्यामा प्रसाद मुखर्जी के बारे में कैसे जानती हो?" मैंने बताया कि जब मेरे पिताजी कलकत्ता यूनिवर्सिटी में 'पोस्ट ग्रेजुएट' थे तब वहां के वाइस चांसलर श्यामा प्रसादजी ने ही आसाम के इस युवा छात्र के लिए वजीफ़ा दिलवाया था। मैंने यह भी कहा कि मेरे



पिताजी बहुत बार उनके असमय निधन (जून १९५३, जब वे मात्र ५१ वर्ष के थे) पर गहरा विषाद प्रकट करते थे।

मैंने देखा कि उम्र में छोटे राजनेता चेहरा घुमा कर प्रायः बुदबुदाये —“अच्छा है, ये काफी बातें जानती हैं...”

अचानक वयस्क बोल उठे—“तुमलोग गुजरात में हमारी पार्टी में क्यों नहीं शामिल हो जातीं?” हमने यह कह कर उनकी बात को हंसी में उड़ाना चाहा कि हम गुजरात की नहीं हैं। छोटे ने छूटते ही बलपूर्वक कहा, “उससे क्या फर्क पड़ता है? हमें उसमें कोई दिक्कत नहीं। हम अपने राज्य में प्रतिभा को हमेशा न्योता देते हैं।” उनकी शान्त-मुखमुद्रा में अचानक मैंने चमक की चिनगारी देखी।

फिर खाना आया—चार निरामिष थालियां। हमने शान्तिपूर्वक भोजन किया। जब पैसे देने की बारी आयी तो छोटे राजनेता ने सबके पैसे चुकता कर दिये। उनकी उन हंसमुख आर्खों और मौन चेहरे को देख हम चाहते हुए भी एक अदना सा शुक्रिया अदा करने के अलावा और कुछ न कर पाये।

कुछ घण्टों के बाद जब टिकट-चेकर ने आकर सखेद यह घोषणा कर दी कि खचाखच भरी रेल में वे हमारे लिए कोई सीट न जुटा पाये तो फौरन दोनों सज्जन उठ खड़े हुए—“कोई बात नहीं, हम देख लेंगे”—का आश्वासन न केवल टी.टी बल्कि हमें भी सौ प्रतिशत मिला। आनन-फानन हमें सीटें देकर उन्होंने अपनी-अपनी चादर फर्श पर बिछा लीं! हम दोनों हक्की-बक्की रह गयीं!!

कैसी विषमता... पिछली रात भी मैंने राजनेताओं के साथ सफर किया—कैसी दहशत-भरी घड़ियां गुजरी थीं; आज भी दो राजनेता हैं—कैसा सुकून-भरा सफर है...।

अगली सुबह जब रेल अहमदाबाद के करीब पहुंच रही थी तो उन दोनों ने हमसे हमारे ठहरने के बन्दोबस्त के बारे में पूछा। बड़े ने कहा कि अगर हमें यहां कोई भी दिक्कत हो तो उनके घर पर हमारा स्वागत है। दोनों के हाव-भाव में वाकई हमारे लिए सच्ची चिन्ता थी। दूसरे ने मुस्कुरा कर कहा, “बहनो, मैं तो ठहरा खानाबदोश, आपको निमन्त्रण देने के लिए न मेरा कोई पक्का घर है न द्वार। हां, इस नये शहर में इनका आमन्त्रण

आप जरूर स्वीकार कर लें।”

हमने दोनों को अनेकानेक धन्यवाद दिये और उन्हें आश्चस्त किया कि यहां हमारे ठहरने का अच्छा इन्तजाम है।

स्टेशन आने से पहले मैंने अपनी डायरी निकाल उनके नाम दोबारा पूछे। मैं अपने उन उदार-हृदय राजनेता सहायत्रियों के नाम भूलना नहीं चाहती थी जिन्होंने सामान्य राजनेताओं के प्रति एकाएक मेरा दृष्टिकोण ही बदल दिया था। मैंने जल्दी से दोनों के नाम लिख डाले—शंकर सिंह वाघेला और नरेन्द्र मोदी।

१९९५ में यह घटना मैंने आसाम के एक अखबार के लिए लिखी थी। यह गुजरात के उन दो अनजान राजनेताओं के प्रति मेरा कृतज्ञता-ज्ञापन था जिन्होंने आसाम की दो 'बेनों' के लिए खुशी-खुशी अपनी खुशी का त्याग कर दिया था। जब मैंने वह लेख लिखा था तो रत्ती-भर भी नहीं सोचा था कि ये दोनों नौजवान भारत के दिग्गज नेता बनेंगे। १९९६ में जब शंकर सिंहजी गुजरात के मुख्यमंत्री बने तो मैं प्रसन्न हो उठी। २००१ में जब मोदीजी ने गुजरात के मुख्यमंत्री की बागडोर संभाली तो मैं फूल उठी। और आज वे हैं भारत के कर्णधार—हमारे प्रधानमंत्री!

जब-जब मैं मोदी जी को दूरदर्शन पर देखती हूं, तब-तब मुझे घेर लेती हैं वे यादें—उस रात का वह गरमागरम खाना, उन दोनों का वह सौजन्यपूर्ण व्यवहार, घर से दूर, रेलगाड़ी में बितायी रात में उनके द्वारा मिली सुरक्षा की वह भावना... और तब अपार आनन्द से न केवल मेरा शरीर पुलक उठता है बल्कि रोम-रोम उनकी वन्दना में शीश नवा लेता है।

अनु. वन्दना

—लीना सरमा

शुल्क-दरें : १ वर्ष—१८० रु.

३ वर्ष—५२० रु.

५ वर्ष—८६० रु.

पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द



अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन— 0565—3240006, 9358340375

Website : [anvaschool.org](http://anvaschool.org), Email-[amarnath.mtr1@rediffmail.com](mailto:amarnath.mtr1@rediffmail.com)

Date of Publication: 1<sup>st</sup> November 2015

Rs. 15.00 (Monthly)

Registered: SSP/PY/47/2015-2017

RNI No.18135/70

WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

**vatika**  
www.vatika.com



# MatriKiran

SOHNA ROAD

**ADMISSIONS OPEN:**  
**Pre-Nursery to Grade 7 2014-15 Session**

[www.matrikiran.in](http://www.matrikiran.in) • (0124) 400-5505

***Your child  
has 5 facets  
So should  
his education***



"The most precious gift you can give a child is The Love of Learning" – The Mother